चतुर्थ अध्याय

SHIVAJI UNIVERSITY
LIBRARY
KOLHAPUR

✻ चतुर्थ अध्याय ✻

''विवेच्य उपन्यासों में मुस्लिम जीवन-संघर्ष''

4.1 प्रस्तावना -

अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में मुस्लिम पात्रों की संख्या अत्यधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होती है । उनके उपन्यासों में हिंदू तथा अन्य पात्रों का चित्रण मुस्लिम पात्रों की तुलना में कम मिलता है । विवेच्य उपन्यासों में अधिकतर मुस्लिम पात्र विभिन्न संघर्ष से पीड़ित दिखाई देते हैं । इन पात्रों के संघर्ष को जानने के पहले हमें मुस्लिम जीवन-संघर्ष का आरंभ तथा उसकी पृष्ठभूमि कैसी रही है इन बातों का विवेचन करना आवश्यक महसूस होता है।

4.2 मुस्लिम जीवन संघर्ष की पृष्ठभूमि -

भारतवर्ष भिन्न-भिन्न जातियों, धर्मों और संस्कृतियों का संगम है । हिंदू धर्म और संस्कृति इस देश की प्रमुख संस्कृति है । लेकिन हिंदू के अलावा अन्य जातियों का महत्त्व भी कम नहीं है । मुसलमान भारतीय राष्ट्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । दो कौमों की गलत अवधारणा के आधार पर भारत का जो विभाजन हुआ उसने भारतीय मुसलमानों के लिए एक अजीब सी परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी । सच्चे अर्थों में देखा जाए तो यही से मुस्लिम जीवन-संघर्ष का आरंभ होता है । राम आहूजा के मतानुसार - ''लगभग दो लाख व्यक्तियों का सन 1947 के विभाजन और दंगों में मारे जाने का अनुमान है और लगभग साठ लाख मुसलमान और साड़े चार लाख हिंदू और सिख शरणार्थी हो गए ।''[1] उक्त कथन से विदित होता है कि मुस्लिमों के संघर्षमय जीवन की स्थिति सन 1947 तथा देश विभाजन के बाद से लेकर आज तक परिलक्षित होती है ।

पाकिस्तान में आज तक हजारों मुसलमान ऐसे बसे हुए हैं जिनके अनेक भाई इधर भारत में रह रहे हैं । आज के पाकिस्तान के अध्यक्ष जनरल परवेझ मुशर्रफ भी भारत के ही

---

1. राम आहूजा - सामाजिक समस्याएँ, पृष्ठ - 115

निवासी रहे हैं । आज भी उनकी पुरानी हवेली दिल्ली में है । सन 1965 के भारत-पाक युद्ध के समय भी मुसलमानों को भय, आतंक आदि संघर्षों का सामना करना पड़ा है । हिंदुस्तान का भारत-पाकिस्तान यह विभाजन दुनिया के इतिहास में एक अलग ही त्रासदी का उदाहरण है । देश विभाजन के पश्चात सांप्रदायिक दंगों ने सारे देश को हिला दिया । सदियों से एक साथ रहते आये मुसलमान और हिंदू एक-दूसरे के कट्टर दुश्मन बन गए । हजारों हिंदू और मुसलमान बेघर हो गए । जिसे अपनी मातृभूमि से अटूट प्यार था वह टूट गया ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सही अर्थों में मुस्लिम जीवन-संघर्ष का आरंभ देश विभाजन के पश्चात हुआ दृष्टिगोचर होता है । जैसे-जैसे सांप्रदायिक वाद को बढ़ावा मिला वैसे मुसलमानों के संघर्षमय जीवन को प्रेरणा ही मिलती रही है ।

4.2.1 मुस्लिमों का हिंदुस्तान में आगमन :-

इस्लाम धर्म के संस्थापक पैगंबर मुहम्मद साहब थे । इस्लाम का उदय ईसा की छठवीं-सातवीं शताब्दी में हुआ । मुसलमानों का हिंदुस्तान में आगमन अपेक्षाकृत भिन्न परिस्थितियों में हुआ परिलक्षित होता है । इस्लाम के उदय के पश्चात पहले अरब और तदुपरान्त तुर्कों ने हिंदुस्तान पर आक्रमण किए । इस्लाम के हिंदुस्तान-आगमन का प्रमुख लक्ष्य इस्लाम का प्रचार और प्रसार करना था । चीनी यात्री ह्यूनत्साँग की भारत यात्रा के पश्चात अरबों ने 637 ई. में फारस (ईरान) को जीत लिया तो उनका ध्यान भारत की ओर गया । प्रारंभ में अरब व्यापारी बनकर आए थे । अरबों ने ही हमारे देश में इस्लाम का बीज बोया । हिंदुस्तान पर सात-आठ सौ वर्षों तक मुस्लिम शासकों का राज्य रहा । डॉ. विजयदेव झारी सही कहते हैं - ''भारत के इतिहास में 16 वीं शताब्दी से पूर्व के सात सौ वर्षों का समय मुस्लिमकाल नाम से जाना जाता है ।''[1]

मुहम्मद गजनी के आक्रमणों से भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ था । भारत आक्रमण के समय तैमूर ने अपने संस्मरण में लिखा है - ''मी भारतावर इस्लाम धर्माच्या प्रसाराकरिताच आक्रमण केले. अनेक ईश्वर पूजकांची समाप्ती

---

1. डॉ. विजयदेव झारी - हिन्दी कहानी में मुस्लिम जीवन और संस्कृति, पृष्ठ-64

करण्याकरिता...''[1] (मैंने भारत पर इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए आक्रमण किया । अनेक आस्तिकों के विनाश के लिए आक्रमण किया ।) तैमूर ने पूरा हिंदुस्तान रक्तरंजित बनाया था । इससे पूर्व किसी भी विजेता ने अपने एक आक्रमण में भारत को इतनी हानि नहीं पहुँचाई थी, जितनी तैमूर के आक्रमण से हुई ।

सभी मुसलमानों के हिंदुस्तान-आगमन का प्रमुख लक्ष्य इस्लाम का प्रचार और प्रसार करना रहा है । हिंदुस्तान में हुए मुसलमानों के आगमन के संदर्भ में मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है - ''देखी न होगी ऐक्य की ऐसी किसी ने छिन्नता,

बढ़कर महा मत-भिन्नता फैली भयंकर खिन्नता ।
आखिर अहले इस्लाम-दल को हम बुलाकर ही रहे,
स्वातन्त्र्य को मानो सदा को हम सुलाकर ही रहे ।''[2]

इससे स्पष्ट होता है कि मुसलमानों ने अपने ऐक्य को स्पष्ट करके दिखलाया और पूरे हिंदुस्तान में भयावह स्थिति का निर्माण करके हिंदू धर्म का विध्वंस करने के लक्ष्य को प्रधानता दी हुई दृष्टिगोचर होती है ।

निष्कर्षत: स्पष्ट है कि हिंदुस्तान में मुस्लिमों का आगमन इस्लाम के उदय के पश्चात हुआ है । हिंदुस्तान में प्रथम आक्रमणकारियों के रूप में अरब और तुर्कों का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है । इस्लाम के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ इनके हिंदुस्तान के आकर्षण का केंद्र हिंदुस्तान की अपार धनसंपत्ति भी रहा है । अरबों ने बोए इस्लाम के बीज को उनके अनुयायियों ने निरंतर सिंचित करने का प्रयास किया ।

4.2.2 मुगल सल्तनत :-

भारत में मुगल सल्तनत की स्थापना का श्रेय अकबर को दिया जाता है । लेन पुल के मतानुसार ''Babar is ..... no architect of empire, he yet laid the first stone of the splendid fabric which his grandson Akbar achieved.''[3] बाबर मुगल साम्राज्य का वास्तविक निर्माता नहीं था । उसने उस सुन्दर भवन की आधारशिला रखी जिस पर उसके

---

1. डॉ. बी.आर. आंबेडकर - पाकिस्तान अथवा भारताची फाळणी, पृष्ठ - 33 (भारत-पाकिस्तान का विभाजन)
2. श्री. मैथिलीशरण गुप्त - भारत-भारती, पृष्ठ - 80
3. Lane-Poole Stanley - Babar, Page No. - 9

पोते अकबर ने बाद में साम्राज्यरूपी महल खड़ा किया । सन 1526 से 1761 तक के समय को मुगल सल्तनत का समय माना जाता है । अकबर के पश्चात उसके बेटे शहाजहाँन ने 1628 ई. से 1658 ई. तक मुगल सल्तनत की शान बढ़ाई लेकिन शहाजहाँन के बेटे औरंगजेब की धर्म नीति मुगल सल्तनत के लिए घातक सिद्ध हुई । औरंगजेब को एक राजा और राजनीतिज्ञ के रूप में सफल व्यक्ति नहीं कहा जा सकता । यद्यपि औरंगजेब के काल में मुगल साम्राज्य का अधिकतम विस्तार हुआ । तथापि यह विस्तार क्षणिक रहा हुआ परिलक्षित होता है । मुगलों का राज्य एक पुलिस का ही राज्य था । अकबर ने जिस हिंदू-मुस्लिम एकता एवं सद्भाव को जन्म दिया था; उसके उत्तराधिकारियों, विशेषत: औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता ने इस एकता एवं सद्भाव को समाप्त कर दिया । इस प्रकार औरंगजेब की धार्मिक एवं दक्षिण नीति मुगल साम्राज्य के लिए परम घातक सिद्ध हुई । अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में जब मुगल साम्राज्य कमजोर हुआ तो हिंदुओं ने मुगल साम्राज्य को ध्वस्त करने का भरकस प्रयत्न किया ।

निष्कर्षत: स्पष्ट है कि भारत में मुगल सल्तनत की स्थापना करने का श्रेय अकबर को दिया जाता है । मुगल सल्तनत ने अपने शासनकाल का लक्ष्य हिंदुओं पर अन्याय-अत्याचार एवं शोषण चक्र को बनाये रखना रखा था । मुगल शासक अपने राज्य की स्थापना से लेकर अंत तक हिंदुओं के प्रदेशों पर आक्रमण करते रहे हैं । स्पष्ट है यह जाति अपने अस्तित्व को लेकर संघर्षरत रही है ।

4.2.3 अंग्रेजी राज :-

मुस्लिम शासन काल से ही युरोपीय लोगों का भारत आगमन शुरू हुआ था । ई.स. 1600 में 'ईस्ट इंडिया कंपनी' की स्थापना हुई । उन दिनों युरोपीय लोग भारत की धरती को सोने की धरती कहते थे । उन्हें मालूम हुआ था कि भारत भूमि के कण-कण में सोना है । इसी अतुल ऐश्वर्य-लोभ ने योरोपवासियों को भारतभूमि पर आने के लिए प्रेरित किया । औरंगजेब की मृत्यु ई.स. 1707 में हुई । उसकी मृत्यु के पश्चात भारत की तत्कालीन अराजक स्थिति का लाभ उठाकर अंग्रेज भारत में व्यापारी बनकर आए और शासक बनकर जम गए । डॉ. श्रीवास्तव

जी के मतानुसार - ''प्लासी और बक्सर की लड़ाई में बंगाल के नवाब को पराजित करने के उपरान्त अंग्रेजो का 'मानदण्ड' राजदण्ड में बदल गया ।''[1] अंग्रेजों ने कूटनीति का सहारा लेकर अपने राज्य का विस्तार करना प्रारंभ किया । ''नेपोलियन ने इंग्लैण्ड को 'बनियों' का देश कहा था ।''[2] नेपोलियन की यह उक्ति भारत में आए अंग्रेजों की करतूतों के लिए सही है । सन 1757 में हुए प्लासी के युद्ध के पश्चात ठीक सौ वर्ष बाद सन 1857 में विधिवत भारत पर अंग्रेजों का शासन स्थापित हुआ । 15 सितंबर, 1857 को काश्मीरी दरवाजा तोड़कर अंग्रेजी सेना भारत आयी थी । सन 1857 की जनक्रान्ति के पश्चात अंग्रेजों ने बड़ी सतर्कता के साथ मुस्लिमों को हिंदुओं से अलग करने का प्रयास किया ।

अंग्रेजों की कूटनीति का उल्लेख करते हुए श्रीवास्तव जी लिखते हैं - ''फूट डालो और राज्य करो ।''[3] यह अंग्रेजों की नीति रही है । अंग्रेज भी यह जानते थे कि हिंदू-मुस्लिम एकता उनके दीर्घकाल तक शासक बने रहने में बाधा है । अत: उन्होंने हिंदू-मुस्लिम संघर्ष को बढ़ावा देने की हरसंभव कूटनीति अपनाई । 20वीं शताब्दी में हिंदू-मुसलमानों का संघर्ष दिनों-दिन बढ़ता गया। कुछ समय उन्होंने हिंदुओं को निकट आने दिया और बाद में उन्होंने अपनी कूटनीति में परिवर्तन लाना शुरू किया और हिंदुओं के स्थान पर वे मुसलमानों को निकट लाने लगे । उस समय के बंगाल के गवर्नर ब्लूम फिल्ड फूलर ने एक स्थान पर लिखा है - ''भारत में उसकी (अंग्रेज शासन की) दो पत्नियाँ हैं एक मुस्लिम और दूसरी हिंदू... मुस्लिम अधिक प्यारी है ।''[4] इस उद्धरण से अंग्रेजों की कूटनीति का परिचय हो जाता है । सन 1900 के आस-पास इस कूटनीति का प्रारंभ किया और वह सन 1947 तक जारी रही ।

अंग्रेजों ने भारत में आधुनिक संसदीय प्रजातांत्रिक प्रणाली को प्रयुक्त किया । मैथिलीशरण गुप्त ने अंग्रेजी राज तथा व्यवस्था के संदर्भ में लिखा है -

''सचमुच ब्रिटिश साम्राज्य ने हमको बहुत कुछ है दिया,
... सम्प्रति सभी साधन हमें हैं सुलभ आत्मविकास के,
पथ, रेल, तार मिटा रहे हैं सब प्रयास प्रवास के ।
प्राय: चिकित्सालय, मदरसे डाकघर हैं सब कहीं,
बस पास पैसा चाहिए फिर कुछ असुविधा है नहीं ।''[5]

---

1. डॉ. शैलेन्द्र श्रीवास्तव - स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, पृष्ठ - 18
2. निर्मल कुमार - भारतीय स्वाधीनता का इतिहास, पृष्ठ - 24
3. डॉ. शैलेन्द्र श्रीवास्तव - स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, पृष्ठ - 66
4. Ed. T Watter - The Partition of India Causes & Res, Page No. - 18.
5. श्री. मैथिलीशरण गुप्त - भारत-भारती, पृष्ठ - 87

स्पष्ट है अंग्रेजों ने भारत में अनुदार और अनुत्तरदायी व्यवस्था के स्थान पर उदार और उत्तरदायी प्रणाली को स्थापित किया लेकिन उन्होंने अपनी स्वार्थपरायणता को नजर में रखते हुए सब-कुछ किया हुआ दृष्टिगोचर होता है । ब्रिटिश शासन का प्रमुख लक्ष्य भारत का आर्थिक शोषण करना था। इस प्रकार हम देखते हैं कि अंग्रेजों के भारत आने तथा डेढ़ सौ वर्षों तक शासन करने के पीछे उनकी आर्थिक लालसा एवं स्वार्थी वृत्ति दृष्टिगोचर होती है । उन्होंने ही भारत में रेल, डाक, शिक्षा आदि के बीज बोए लेकिन इन सभी सुविधाओं के पीछे उनका स्वार्थ निहित रहना परिलक्षित होता है ।

4.2.4 आजादी की प्राप्ति :-

तीन शताब्दियों तक इतिहास के सबसे बड़े साम्राज्य पर इग्लैंड ने शासन किया था। हर जाति की कुछ कमियाँ होती हैं । अंग्रेजों की एक महत्त्वपूर्ण कमी है उनके दोहरे सिद्धान्त । उनकी यह कमी उनका विनाश कर सकती थी किंतु भारत में यह भी उनकी जीत का माध्यम बनी। इसका कारण था भारतीयों में राष्ट्रीय भावना का अभाव । अंग्रेज इतिहासकारोंने भारतीयों के स्वाधीनता संघर्ष को अंग्रेजों के प्रति कृतज्ञता, विश्वासघात और बगावत कहा है । निर्मलकुमार के मतानुसार - "1857 के युद्ध को बहुत से भारतीय इतिहासकार भी आजादी की पहली लड़ाई कहते हुए हिचकते हैं ।"[1] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि कुछ भारतीय इतिहासकारों का कहना है कि इसमें लड़नेवाले नेताओं का उद्देश्य संकीर्ण और अपने स्वार्थ तक सीमित था । वे पूरे भारत की आजादी के लिए नहीं लड़ रहे थे । रानी लक्ष्मीबाई इसलिए लड़ रही थी कि उसके दत्तक पुत्र को अंग्रेजों ने वे अधिकार देने से मना कर दिया था जो रानी लक्ष्मी को प्राप्त थे । नाना फडनवीस अपनी पेंशन के लिए और बादशहा बहादुरशहा के सारे अधिकार अंग्रेजों ने छीनने के वाद उनसे लाल किला खाली करने को कहा था ।

सन 1857 की लड़ाई भारतीय स्वाधीनता की पहली लड़ाई थी । बंदूकों के कारतूसों में लगी हुई निषिद्ध चरबी का विरोध करने के परिणामस्वरूप यह स्वातंत्र्ययुद्ध हुआ। सन 1857 की लड़ाई राष्ट्रीय भावना और संगठन के अभाव में असफल हो गयी । यह स्वतंत्रता

---

1. निर्मल कुमार - भारतीय स्वाधीनता का इतिहास, पृष्ठ - 9

की लड़ाई इसलिए थी कि सभी वर्गों के भारतीय अंग्रेजों के जुल्मों, अन्याय-अत्याचारों, चालबाजी और दोहरी नीति से क्षुब्ध हो गये थे । स्वतंत्रता की चिनगारी किसानों, मजदूरों, कारागीरों और व्यापारियों के हृदय में सुलग उठी थी । अंग्रेजों ने भारतीय स्वभाव का वैज्ञानिक अध्ययन किया और उन्हें मालूम हुआ कि भारतीयों को भयभीत नहीं किया जा सकता बल्कि उनें सुलाया जा सकता है । अंग्रेज कहते थे, सोते कुत्ते को सोया रहने दो और जो सो नहीं रहे उन्हें सुला दो । अंग्रेज नीति का यही सार था। उन्होंने भारत को सुलाकर चीन को अफीम की गोली देकर शासन किया ।

15 अगस्त, 1947 को हमारा देश स्वतंत्र हुआ । ब्रिटिशों की गुलामी मुक्त होने के साथ-साथ भारत तथा पाकिस्तान इन दो स्वतंत्र राष्ट्रों का निर्माण हुआ । विभाजन के पूर्व हिंदू-मुस्लिम भाईचारे के नाते से रहते थे । लेकिन विभाजन के पश्चात वे पिशाच, पशुवत व्यवहार करने लगे । कायदे आजम जिना का ख्याल था कि मुसलमान और हिंदू बिल्कुल अलग-अलग राष्ट्र या कौम है इसलिए उनका अलग रहना ही ठीक है । आजादी की प्राप्ति के समय अनेक लोगों की जानें चली गयी ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारत की आजादी में मुख्य भूमिका अंग्रेजों की रही है। 15 अगस्त, 1947 को उन्होंने अपना शासन समाप्त जरूर किया और वे इंग्लंड चले गए परन्तु जाते समय उन्होंने अखंड़ हिंदुस्तान को दो अलग-अलग राष्ट्र अर्थात भारत और पाकिस्तान में विभाजित कर बँटवारा किया । यह अंग्रेजों की कूटनीति का ही परिणाम था ।

4.2.5 देश-विभाजन की त्रासदी और मुस्लिम जीवन-संघर्ष :-

मुस्लिम जीवन-संघर्ष का आरंभ वास्तविक रूप में देश-विभाजन के बाद हुआ परिलक्षित होता है । मुस्लिम लीग की स्थापना लार्ड मिन्टों के समय सन 1906 में हो चुकी थी। जिन्ना उस समय लीग के प्रमुख नेता थे । जिन्ना काँग्रेस के विरोधी थे। काँग्रेस को वे हिंदू संस्था नाम से पुकारते थे । पहली बार 1940 ई. में पाकिस्तान की माँग की गई। जिन्ना के नेतृत्व में पाकिस्तान की माँग उत्तरोत्तर बढ़ती गयी । मुस्लिम लीग की जिद थी कि, स्वतंत्र भारत में

हिंदुओं का संख्याबल अधिक रहेगा और वह अल्पसंख्यांकवाले मुसलमानों को दबाव में रखेंगे। 25 जून, 1946 में हुए चुनाव में काँग्रेस ने 210 जनरल सीटों में से 199 जीती। जबकि मुस्लिम सीटों में लीग ने 73 सीटें जीती। काँग्रेस का भारी बहुमत होने के कारण उन्हें मुस्लिम लीग की मद्द की जरूरत नहीं थी । काँग्रेस अध्यक्ष नेहरू ने एक वक्तव्य दे दिया कि काँग्रेस कैबिनेट प्लान को बदल सकती है इससे जिना को काँग्रेस की नीयत पर शक हो गया । अत: जिना ने लीग द्वारा कैबिनेट प्लान को दी गयी मंजूरी वापस ले ली । उन्होंने पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए मुसलमानों से 'सीधी कार्यवाही' करने को कहा। मुस्लिमों ने हिदुओं पर अन्याय, अत्याचार किए। हजारो निरपराधों की हत्या की ।

देश-विभाजन की त्रासदी का विवेचन करते हुए यज्ञदत्त शर्मा लिखते हैं - ''लाहौर की गली-गली और बाजार-बाजार में मानव रक्त से होली खेली जा रही थी । इन्सान जानवर बन गए थे । ... भारत और पाकिस्तान में रक्त की नदियाँ बह गई । मानव दानव बन गया । निर्दयता पराकाष्ठा को पहुँच गई । दो और चार-चार वर्ष के बच्चों को पैर पर पैर रखकर हत्यारे धर्म के पागल दीवानों ने चीर डाला । फूल से सुकुमार लालों को पिशाचों ने उठा-उठाकर पृथ्वी पर ऐसे पटक दिया, जैसे धोबी पत्थर पर मैले कपड़ों को छाँटता है ।''[1] इस कथन से स्पष्ट होता है कि इसमें नारी जाति का जो अपमान हुआ वह भारत और पाकिस्तान के इतिहास का वो कलंक बनकर रह गया है जिसका धब्बा संभवत: युग-युग तक आनेवाली पीढ़ियाँ अपने रक्त से धोकर भी नहीं मिटा सकेंगी । इसी समय भोली सुकुमार बालिकाओंपर मन-माने अत्याचार हुए। 16 अगस्त को कलकत्ते में और अक्तूबर में नोआखाली में मुस्लिम लीग ने हत्याकाण्ड किया । इससे प्रेरित होकर हिंदू-मुस्लिम दंगे भड़क उठें । यही से मुस्लिमों के संघर्षमय जीवन का आरंभ होता है ।

देश-विभाजन के बाद सांप्रदायिक दंगों ने सारे देश को हिला दिया था । सदियों से एक साथ रहते आए हिंदू और मुसलमान एक-दूसरे के कट्टर दुश्मन बन गए । देश-विभाजन के बाद एक मुस्लिम वृद्ध की मानसिक स्थिति का परिचय देते हुए डॉ. यज्ञदत्त शर्मा कहते हैं - ''एक वृद्ध मुसलमान जी भरकर कोस रहा था पाकिस्तान और हिंदुस्तान के विभाजन को ।

---

1. डॉ. यज्ञदत्त शर्मा - इन्सान, पृष्ठ - 5

अंग्रेज जाता-जाता भी चाल खेल गया । आखिर यह खून खराबा कराकर ही उसने दम लिया।''[1] इस कथन से हम अनुमान लगा सकते हैं कि देश के विभाजन के बाद मुसलमानों को तथा हिंदू एवं सिखों को भी संघर्षमयी परिस्थिति का सामना करना पड़ा है । सन 1942 से 1949 तक का काल भारतीय राजनीति का अत्यंत जटिल और प्रक्षोभक काल है । 3 जून, 1947 को भारत और पाकिस्तान दोनों के स्वाधीन होने की घोषणा की गयी । पूरे स्वतंत्रता संग्राम की अनेक भली बुरी यादें देश भूल जाए, परन्तु देश-विभाजन के समय जो अत्याचार और रक्तपात हुए उन्हें भूल जाना संभव नहीं । वह ऐसा जख्म है, जो आज तक रिस रहा है । पाकिस्तान का निर्माण केवल भौगोलिक दृष्टि से नहीं तो वह हिंदू-मुस्लिम प्रश्न को हमेशा के लिए जीवित समस्या बना देनेवाली घटना है । उसकी अनुभूति हम आज भी कर रहे हैं । विभाजन के बाद भी भारत में सात करोड़ मुसलमान रहते हैं । ये अल्प संख्यांक मुसलमान अपने अलगाव, अकेलेपन की समस्याओं से ग्रस्त है । डॉ. पीतांबर सरोदे के मतानुसार - ''विभाजन की समस्या ने ही हिंदू-मुस्लिम संबंधों में एक बहुत बड़ी दीवार खड़ी कर दी है । दोनों जातियों के सांप्रदायिक दंगों की तीव्रता इस घटना के बाद तेजी से बढ़ी ।''[2] इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि देश-विभाजन की भयावह त्रासदी के पश्चात ही मुस्लिम जीवन संघर्ष का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है ।

उपरोक्त विवेचन-विश्लेषण के पश्चात हम कह सकते हैं कि भारत का आजाद होना और देश का पुन: भारत-पाकिस्तान इन दो राष्ट्रों में विभाजन होना यह बात अंग्रेज कूटनीति का परिणाम है । अंतत: हम यह कह सकते हैं कि देश-विभाजन की त्रासदी और मुस्लिम जीवन के संघर्ष का अटूट रिश्ता रहा है । विभाजन की घटना इस देश के इतिहास का वह कलंक है जिसे कभी भूलाया नहीं जा सकता । देश के विभाजन से लेकर आज तक मुस्लिम अपना जीवन संघर्ष की छाया में बीता रहे हैं ।

4.3 विवेच्य उपन्यासों में प्राप्त संघर्ष -

विवेच्य उपन्यासों में मुस्लिम जीवन-संघर्ष का चित्रण प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर

---

1. डॉ. यज्ञदत्त शर्मा - इन्सान, पृष्ठ - 14
2. डॉ. पिताम्बर सरोदे - आधुनिक हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना, पृष्ठ-124

होता है। विवेच्य उपन्यासों में प्राप्त मुस्लिम जीवन-संघर्ष के विभिन्न पक्षों का विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत है -

4.3.1 धार्मिक एवं सांप्रदायिक संघर्ष :-

विवेच्य उपन्यासों में धार्मिक एवं सांप्रदायिक संघर्ष का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है । धार्मिकता एवं सांप्रदायिकता के कारण संघर्ष कैसे होते हैं, इसका विवेचन करते हुए यशपाल ने लिखा है - ''सांप्रदायिकता समाज और राजनीति में जहर घोलने का काम करती है, देश में जो भी दंगे फसाद हुए, जातियों में विद्वेष का विष फैला, देश के दो टुकड़े हुए, ये सब इसी के परिणाम है । सांप्रदायिकता के कारण मनुष्य-मनुष्य न रहकर पशु बन जाता है।''[1]

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' अब्दुल बिस्मिल्लाह का ख्यातिप्राप्त उपन्यास है । इस उपन्यास के संदर्भ में डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी लिखते हैं - ''काशी के वे मुसलमान बुनकर भी पिछड़े वर्ग की हमारी अवधारणा के अंतर्गत आयेंगे । ये सरकार द्वारा उपेक्षित है और महाजनी व्यवस्था द्वारा शोषित-पीड़ित । ... बिस्मिल्लाह ने इनके अंदर एकजूट होकर संघर्ष करने की चेतना जगाने का कार्य भी किया है ।''[2] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि लेखक का यह सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है । इस उपन्यास में धार्मिक एवं सांप्रदायिक संघर्ष का चित्रण अधिक मात्रा में मिलता है । डॉ. महीपसिंह कहते हैं - ''जब एक संप्रदाय अपने आपको और अपनी परम्पराओं को दूसरे से श्रेष्ठ समझता है और दूसरे सम्प्रदाय के प्रति घृणा को बढ़ावा देता है तो इसमें सांप्रदायिकता का संघर्ष बढ़ जाता है ।''[3] डॉ. राम आहूजा ने सांप्रदायिक संघर्ष को इस ढंग से व्यक्त किया है - ''भारत में हिंदू मुस्लिम सांप्रदायिकता, स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजी शासन की विरासत है ... अधिकांश सांप्रदायिक दंगे धार्मिक त्योहारों के अवसर पर होते हैं ।''[4]

प्रस्तुत उपन्यास में प्राप्त धार्मिक एवं सांप्रदायिक संघर्ष की जड़ें हिंदू-मुसलमानों के त्यौहार ही हैं । त्यौहार एवं उत्सवों के अवसर पर काशी में हुए धार्मिक एवं सांप्रदायिक संघर्ष का विवेचन करते हुए बिस्मिल्लाह जी लिखते हैं - ''आगे-आगे दुर्गा की प्रतिमा और पीछे-पीछे शोर मचाती भीड़ । एक ऐसा शोर जिसका अध्यात्म से कोई मतलब नहीं । ठीक इसी तरह

---

1. यशपाल - झूठा सच, पृष्ठ - 471
2. डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी - हिंदी उपन्यास समकालीन विमर्श, पृष्ठ - 68
3. सं. डॉ. महीपसिंह - 'संचेतना' त्रैमासिक, जून - 1984, अंक - 70, पृष्ठ - 9
4. डॉ. राम आहूजा - सामाजिक समस्याएँ, पृष्ठ - 113

का शोर उस वक्त भी होता है जब ताजिए का जूलूस निकलता है । धर्म दोनों ही अवसरों पर सड़कछाप हो जाता है । वह सरेआम सिर के बल खड़ा हो जाता है । लेकिन फिर भी लोग कहते हैं यह सत्य है और सिर्फ यही सत्य है । इस सत्य के लिए लोग कट मरते हैं ।''[1] उक्त उद्धरण से लेखक जन-मानस तथा पूरे समाज को संदेश देना चाहता है कि अध्यात्म क्या है? धर्म क्या है? धर्म के नाम पर हम किस प्रकार गलत रास्ते से गुजरते हैं । लेकिन किसी भी धर्म के धर्मग्रंथों में धार्मिक संघर्ष की बात नहीं कही है। हर समाज के अपने-अपने त्यौहार, उत्सव होते ही हैं। हिंदू धर्म में दूर्गापूजा के उत्सव को महत्त्व दिया जाता है तो मुस्लिम समाज में ताजिए को महत्त्व दिया जाता है । दोनों धर्मावलंबियों के अज्ञानवश धर्म संघर्ष का रूप धारण करता है और इसका परिणाम दोनों धर्मावलंबियों को दीर्घकाल तक भुगतना पड़ता है । जनता का जन-जीवन ध्वस्त हो जाता है ।

दुर्गापूजा के अवसर पर हुए दंगे का चित्रण करते हुए लेखक कहते हैं - ''अचानक छत से बारिश होने लगती है । पत्थरों ईंट के टुकड़ों और खाली बोतलों की बारिश ! फिर पिसा हुआ मिर्चा और तेजाब ! भगदड़ मच जाती है ।''[2] प्रस्तुत उद्धरण से लेखक विदित कर देना चाहता है कि धार्मिकता एवं सांप्रदायिकता के कारण मुसलमानों को संघर्षमय जीवन का अनुभव करना पड़ा है । लेखक संकेत करते हैं कि हमारे देश में कभी-कभी बारिश भी समय पर नहीं होती लेकिन धार्मिक एवं सांप्रदायिक संघर्ष अपने निश्चित समय पर होते रहते हैं । आज की परिस्थिति तथा मुस्लिम जीवन की संघर्षमय जिंदगी का परिचय करते हुए भीष्म साहनी लिखते हैं - ''सांप्रदायिकता की समस्या बटवारे के साथ खत्म नहीं हो गयी, यह मनोवृत्ति यह रवैया आज भी हमारे समाज में रहकर अपना भयावह रूप दिखाते हैं ।''[3] अब्दुल बिस्मिल्लाह और भीष्म साहनी, दोनों समाज की इस जहररूपी प्रवृत्ति को उजागर करने का प्रयास करते हैं । आज भी हिंदू-मुस्लिमों के त्यौहारों के अवसर पर धार्मिक एवं सांप्रदायिक संघर्ष हुए दृष्टिगोचर होते हैं। डॉ. अर्जुन चव्हाण मुस्लिम जीवन से संबंधित संघर्ष की आरंभिक बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं - ''हिंदू-मुस्लिम संधर्मियों का संघर्ष कोई नया संघर्ष नहीं है । मुसलमानों के आगमन से यह चलता आ रहा है और आज भी इसका अभाव नहीं दिखाई देता । इन दो धर्मियों का

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 162
2. वही, पृष्ठ - 162
3. सं.भीष्म साहनी - 'सारिका' मासिक, नवम्बर 1978, पृष्ठ - 16

कारण है धार्मिक अलगाव तथा राजनीतिक स्वार्थ ।''[1] बनारस तथा बनारस के आस-पास हुए सांप्रदायिक एवं धार्मिक संघर्ष के कारण कई मुसलमान बुनकरों को विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । जो बुनकर गिरस्तों के यहाँ मजदूरी पर बीनते थे उनकी हालत खराब हो गयी । शहर में हुए दंगे के कारण पूरा जन-जीवन ध्वस्त हो गया । अक्सर धार्मिक एवं सांप्रदायिक संघर्ष की जड़ तो उच्चवर्गीय समाज ही होता है लेकिन इसके परिणाम निरपराध गरीब मुस्लिम बुनकरों को भुगतने पड़ते हैं । रघुवीर सहाय ने ठीक ही कहा है - ''दास भाव से शासन की नकल करता हुआ प्रत्येक वर्ग यह हिंसक चीज अपने से कमजोर पर उतारता है; दंगे ऐश्वर्यशाली बस्तियों में नहीं होते; मारे जाते हैं तो रोज कुआ खोदकर पानी पीनेवाले ही मारे जाते हैं ।''[2] स्पष्ट है अब तक बनारस में तथा पूरे देश में जितने भी दंगे-फसाद हुए उसमें गरीबों का जीवन ही ध्वस्त हुआ दृष्टिगोचर होता है । वे अपनी रोजी-रोटी को भी पाने में असमर्थ हो जाते हैं ।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में भी धार्मिक एवं सांप्रदायिक संघर्ष का चित्रण प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होता है । जबलपुर में हुए दंगे का चित्रण करते हुए बिस्मिल्लाहजी लिखते हैं - ''जबलपुर में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच लड़ाई हो गयी थी न; कल वहाँ हमारे देश के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू जी आए थे । उनके भाषण को सुनने के बाद हिंदुओं और मुसलमानों ने दंगा बंद कर दिया । ... हिंदुओं से बोले - मुसलमानों का क्या है, वे तो बकरे बकरियाँ है । तुम लोग जब चाहों उन्हें काटकर खा सकते हो । मगर यह न भूलों कि वे भी तुम्हारे ही घर के सदस्य है ।''[3] उक्त कथन से लेखक कहना चाहते हैं कि जबलपुर में हिंदू-मुसलमानों में संघर्ष तो जरूर हुआ लेकिन इसका कारण क्या है? इस प्रश्न के उत्तर से जबलपुर में हिंदू-मुसलमानों में संघर्ष शुरू होता है । जबलपुर के मुस्लिम सेठ का लड़का अन्वर और दूसरे हिंदू सेठ की लड़की ऊषा, इन दोनों में प्यार-मुहब्बत हो जाती है । कुछ नामुराद इस मौके का लाभ उठाकर लड़ने लगते हैं । लेकिन इनके प्यार का परिवर्तन हमें सांप्रदायिक संघर्ष में हुआ परिलक्षित होता है ।

---

1. डॉ. अर्जुन चव्हाण - राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यमवर्गीय जीवन, पृष्ठ - 51
2. रघुवीर सहाय - वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे, पृष्ठ - 117
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह - मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ 87

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक स्पष्ट करता है कि किस प्रकार से विभिन्न स्तरों पर धार्मिक एवं सांप्रदायिक संघर्ष होता है और मुसलमानों को उस भयावह परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। बलापुर से कुछ दूरी पर स्थित स्कूल में अली अहमद अपने बेटे का नाम दर्ज करता है । एक दिन विद्यार्थी तय करते हैं कि हर विद्यार्थी कोई प्रश्न पूछेगा और अन्य विद्यार्थी को उसका उत्तर देना होगा । जब बुद्धू की बारी आती है तो प्रश्न करता है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू का जन्म कब हुआ था? बुद्धू के प्रश्न को सुनने पर अन्य विद्यार्थी बुद्धू का मजाक उड़ाने लगते हैं । मनोज कुमार नामक विद्यार्थी कहता है - ''क्यों बे मुसल्ले, नेहरूजी तुम्हारे नाना लगते हैं क्या?''[1] मनोज का यह कथन सुनकर बुद्धू बेचैन होता है । दूसरी ओर से अशोक कुमार पाण्डे बड़ी हिकारत के साथ बोलता है - ''इन लोगों के सारे काम उल्टे होते हैं। हम लोग सीधे ढंग से हाथ धोते हैं, ये लोग उल्टे ढंग से । हम लोगों के यहाँ सीधे तवे पर रोटी बनती है, इनके यहाँ उल्टे तवे पर । हम लोग बाल मुड़ाते हैं, ये लोग नूनी कटाते हैं । सुना नहीं है? हिंदुअन की फलान और मियन की दाढ़ी...''[2] अक्सर बुद्धू द्वारा किया गया प्रश्न सही था लेकिन उस स्कूल में बुद्धू अकेला मुसलमान था बाकी सभी छात्र हिंदू थे । अशोक कुमार पाण्डे के प्रस्तुत कथन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने सांप्रदायिकता की नीति अपनाई है । इस सांप्रदायिक स्थिति के कारण ही बुद्धू को संघर्ष की परिस्थिति का सामना करना पड़ता है ।

देश-विभाजन के पश्चात एक बंगाली बाबू कहता है - ''अमारा जवान बेटा मार दिया गया । अमारा घर लूट गया । अब हम क्या करेगा जाके ।''[3] बंगाली बाबू पाकिस्तान के दो टुकड़े एक पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान होने के बाद अपना जीवन संघर्ष की स्थिति में बिताता है । वह शरणार्थियों के रूप में भारत आया था लेकिन दुबारा वापस नहीं जाना चाहता है । इससे उसके संघर्ष का परिचय हो जाता है । निष्कर्षत: स्पष्ट है अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' एवं 'मुखड़ा क्या देखे' में प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण अधिक मात्रा में मिलता है । इन संघर्षों के मूल में धार्मिक त्यौहार, उत्सव एवं देश-विभाजन की विभीषिका रही है ।

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ - 121
2. वही, पृष्ठ - 121-122
3. वही, पृष्ठ - 181

4.3.2 अधिकार के लिए संघर्ष :-

समाज में निर्मित वर्ग संघर्ष के कारण संविधान द्वारा दिए गए अधिकारों का लाभ सिर्फ पूँजीपति लोग उठाते हैं और समाज के ही महत्त्वपूर्ण माने जानेवाले सर्वहारा वर्ग को सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक आदि सभी अधिकारों से वंचित रखा जाता है । मार्क्स के अनुसार - ''समस्त समाजों का इतिहास दास व्यवस्था से लेकर पूँजीवादी व्यवस्था तक वर्ग संघर्ष का इतिहास है ।''[1] स्वाभाविक रूप से मनुष्य अपने अधिकारों के खिलाफ संघर्ष करता हुआ परिलक्षित होता है । हमारे समाज में एक मान्यता प्रचलित है कि जब एकाध चीज सहज तथा विनम्रतापूर्वक माँगने से नहीं मिलती तब उसे छिनकर प्राप्त करना उचित है ।

विवेच्य उपन्यासों में अधिकार के लिए किए गए संघर्ष का चित्रण कम मात्रा में क्यों न हो लेकिन अवश्य परिलक्षित होता है ।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'समर शेष है' में अधिकार के लिए किए गए संघर्ष का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है । डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने डॉ. नगेंद्र की पुस्तक अर्द्धकथा के विमोचन समारोह में (17 अगस्त, 1981) कहा था - ''आत्मकथा लेखन एक प्रकार का आत्मसाक्षात्कार है जिसके लिए साहस की आवश्यकता होती है ।''[2] यह साहस हमें बिस्मिल्लाह जी में दृष्टिगोचर होता है । कथा-नायक अपने संघर्षमयी जीवन में दर-दर की ठोकरे खाने के बाद पुन: मोहम्मद भैया के पास चला जाता है, तब भाभी आलू ठीक से न छीलने के कारण कथा-नायक पर उखड़ जाती है - ''कल जब हक-हिस्से की माँग करेंगे तो सारा छोहाना एक ही दिन में निकल जाएगा ।''[3] भाभी के कथन को सुनकर कथा-नायक कहता है - ''हक-हिस्से पर विचार करने का समय कहाँ था ! अधिकार की लड़ाई से ज्यादा जरूरी जिंदगी की लड़ाई थी।''[4] इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि कथा-नायक और भाभी में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में अधिकारिक संघर्ष दृष्टिगोचर होता है ।

कथा-नायक अपने कर्मशील जीवन में एक होटल में काम करता था । वह कहता है - ''मेरे खा चुकने के बाद मालिक ने मुझसे इस तरह पूछा जैसे आराम करने का अधिकार सिर्फ मालिकों को ही होता है और नौकर अगर आराम करें तो मालिकों की मर्जी उसमें शामिल होनी

---

1. सं.मोटूरि सत्यनारायण - विश्वज्ञान संहिता कोश, भाग-1, पृष्ठ - 312
2. डॉ. शंकर दयाल शर्मा - मंजूषा, पृष्ठ - 14
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 43
4. वही, पृष्ठ - 43-44

चाहिए।''[1] कथा-नायक आराम तो करना चाहता था । लेकिन यहाँ बात स्पष्ट हो जाती है कि आज भी हमारे समाज में मालिक लोग अधिकार जमाने का भरकस प्रयास करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं । लेखक मालिकों की अधिकार वृत्ति की ओर समाज का लक्ष्य केंद्रित करना चाहता है। कथा-नायक को संघर्ष करने के पहले ही अधिकार मिल जाता है । लेकिन यहाँ संघर्ष की स्थिति अवश्य उत्पन्न हुई परिलक्षित होती है ।

कथा-नायक की जिंदगी का मौसम पुन: बदला हुआ दृष्टिगोचर होता है । भाभी कथा-नायक की आगे की पढ़ाई की जिम्मेदारी उठाती है । वह कथा-नायक से कहती है - ''इस घर में आपका भी हिस्सा है । बाग-बगीचे पर जितना हक इनका है, उतना ही आपका भी है । हम सब दिलवाएँगे आपको ।''[2] लेकिन मुहल्ले के कुछ लोग भाभी के लड़कों को कथा-नायक के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं और उन्हें भड़काते हैं । भाभी ने जो कहा था वह सही था, लेकिन लोगों के भड़काने से भाभी का मँझला लड़का कहता है - ''कौन मादर ... लेता है हिस्सा, हम भी देखेंगे। और दाँत पीसता हुआ आँगन में चला गया।''[3] इसे सुनकर कथा-नायक को गुस्सा आ गया । वह इन लोगों की गालियाँ तो सहने के लिए तैयार नहीं था । कथा-नायक घर छोड़के चला जाता है । स्पष्ट है कि समाज में आज भी हमें घर, जमीन तथा अन्य कारणों के अधिकारों को लेकर संघर्ष दृष्टिगोचर होता है ।

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में अधिकार के लिए किए गए संघर्ष का चित्रण अत्यधिक मात्रा में मिलता है । बशीर का परिवार आर्थिक अभाव से पीड़ित है । बशीर की बीमारी के कारण उसकी पत्नी हाजी साहब से कर्ज लाती है लेकिन आर्थिक विपन्नता के कारण बशीर कर्ज समय पर नहीं दे पाता है । हाजी साहब कर्ज के बदले में बशीर के घर पर कब्जा करना चाहते हैं और कहते हैं - ''फेंक दो बुरचोदीवाले का कुल सामान। और म्याँ, कब्जा हो गया बशीर के घर पर हाजी अमीरूल्ला गिरस का।''[4] बशीर का घर भी मानों खंड़हर के समान ही था । फिर भी हाजीसाहब बशीर के घर पर कब्जा करते ही हैं । इसी कर्ज के बदले में हाजीसाहब के बेटे ने बशीर की बेटी रेहनवा की इज्जत भी लूटी थी । बशीर हाजीसाहब से होनेवाले शोषण तथा अन्याय, अत्याचार को खामोश रहके सहता है । जबकि हाजी साहब

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 51
2. वही, पृष्ठ - 146
3. वही, पृष्ठ - 146
4. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 51

मौके का लाभ उठाकर अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए बशीर के घर पर अधिकार जमाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास का केन्द्रीय पात्र मतीन बनारस के मुसलमान बुनकरों के अधिकारों के लिए काफी संघर्ष करता हुआ परिलक्षित होता है । लेकिन मतीन संघर्ष में हारता है, फिर भी वह प्रयत्नशील है। सरकार से दी गई अनेक सहूलियतें हैं जिनका लाभ उठाना मतीन अपना अधिकार समझता है । मतीन सोसायटी के लिए धनराशि प्राप्त करने के लिए बैंक में जाता है । लेकिन बैंक में मतीन को अलग ही अनुभव आता है । बैंक मॅनेजर मतीन से कहते हैं - ''जनाब अब्दुल मतीन अंसारी साहब, जाइए और चुपचाप अपनी साड़ी बिनिये । फ्राड़ करना बहुत बड़ा जुर्म है।''[1] मतीन खामोश रहता है । वास्तविक 'फ्रॉड' तो हाजी साहब ने ही किया था और उन्होंने फर्जी सोसायटी बनायी थी । यहाँ मतीन और बैंक मॅनेजर में संघर्ष दृष्टिगत होता है ।

जब मतीन बुनकरों के अधिकारों को प्राप्त कराने में असफल होता है तब मतीन का बेटा इकबाल मतीन की अधिकारों से संबंधित आकांक्षाओं को पूरा करने का भरकस प्रयास करता है । वह मुसलमान बुनकरों को अपने अधिकारों की जानकारी देता है और कहता है - ''हजरात ! हमें अपने हक के लिए खुद लड़ना होगा । आप जानते हैं कि जिस बनारसी साड़ी की धूम पूरी दुनिया में है - आज से नहीं सैंकड़ो बरस से और जिसके बल पर बड़े-बड़े गिरस्ता लोगों की बिल्डिंगे तनी जा रही हैं, ऐशो-इशरत के सामान ने इनके घर भरे जा रहे हैं, उस साड़ी को बनानेवाले हम हैं ... कर्ज के बोझ से हमारे कन्धे जमीन तक झुक गये हैं । हमारे करघे कर्ज पर, रेशन कर्ज पर - सबकुछ कर्ज पर । और बदले में हमें क्या मिलता है?''[2] इससे स्पष्ट होता है कि सभी मुसलमान बुनकरों पर इकबाल की वाणी का प्रभाव पड़ता है और वे अपने हक के लिए लडते हैं । उपर्युक्त दोनों उपन्यासों में अधिकार के लिए संघर्ष किया हुआ परिलक्षित होता है।

4.3.3 अस्तित्व के लिए संघर्ष (Struggle of Existence) :-

अस्तित्व मनुष्य के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है । अस्तित्व के लिए संघर्ष को केंद्र में रखते हुए ख्यातिप्राप्त मनोवैज्ञानिक जे.पी. गिलफोर्ड ने लिखा है - ''No one

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 103
2. वही, पृष्ठ - 184

escapes conflicts.''[1] (संघर्ष से कोई मुक्त नहीं है।) संघर्ष हर व्यक्ति के जीवन में बना रहता है और मनुष्य को संघर्ष करना भी पड़ता है । डॉ. लक्ष्मीनारायण ने तो लिखा है कि ''जिन्दगी भी तो नाटक है । ... जहाँ कोई चीज पहले से निश्चित नहीं है ।''[2] स्पष्ट है कि इस नाटक रूपी जिंदगी में अस्तित्व अहम भूमिका निभाता हुआ दृष्टिगोचर होता है । हमें अस्तित्व के लिए संघर्ष से संबंधित विविध रूप दिखाई देते हैं । धर्म के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए मुस्लिमों द्‌वारा हुए संघर्ष को चित्रित करते हुए डॉ. अर्जुन चव्हाण कहते हैं - ''जब धर्म पर बाधा आ जाती है तब इन्सान शैतान बन जाता है । कभी-कभी स्वधर्म की श्रेष्ठता साबित करते समय विधर्मियों पर अन्याय भी किया। ... विधर्मियों को अपने धर्म के अनुयायी बनाने का प्रयोग भी उन्होंने कम नहीं किया।''[3]

विवेच्य उपन्यासों में अस्तित्व से संबंधित संघर्ष का चित्रण अधिक मात्रा में मिलता है । 'समर शेष है' में भी प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण मिलता है । कथा-नायक अपने संघर्षशील जीवन में 'बलापुर' में भाभी के पास रहता था लेकिन आगे चलकर भाभी कथा-नायक को घर से चले जाने के लिए कहती है । तब कथा-नायक और अब्बा रात भर चर्चा करते हैं कि - ''बलापुर से जाते हैं तो पढ़ाई नष्ट होती है और रहते हैं तो स्वाभिमान की हत्या होती है । शिक्षा जरूरी है या स्वाभिमान?''[4] कथा-नायक के लिए अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए दोनों भी चीजें आवश्यक थीं । जहाँ तक शिक्षा और स्वाभिमान का प्रश्न है, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । कथा-नायक उलझन में पड़ जाता है क्योंकि ये दोनों घटक अस्तित्व पर प्रभाव डालते हैं । जीवन में अस्तित्व को बनाये रखने में स्वाभिमान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । हमारे समाज में स्वाभिमान से जीना कुछ अलग याने श्रेष्ठ माना जाता है । लेकिन कथा-नायक और अब्बा वही बेहया बनकर रहते हैं । यहाँ कथा-नायक के अस्तित्व से संबंधित संघर्ष का पता चलता है । स्पष्ट है कथा-नायक अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयासरत दृष्टिगोचर होता है ।

'झीनी झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में अस्तित्व के लिए किए गए संघर्ष का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है । लतीफ अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए किस प्रकार

---

1. J.P. Guilford - General Psychology, Page No. - 144
2. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - करफ्यू, पृष्ठ - 48
3. डॉ. अर्जुन चव्हाण - राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यमवर्गीय जीवन, पृष्ठ - 50-51
4. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 13

संघर्ष करता है इस बात को स्पष्ट करते हुए लेखक ने लिखा है - ''लतीफ उदास हो जाता है । उदास इसलिए हो जाता है कि वह अपना चन्दा और आगे बढ़कर नहीं लिखवा सकता । यहाँ तो होड़ है । इस होड़ में वह नहीं शामिल हो सकता ।''[1] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि अर्थाभाव के कारण लतीफ अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर पाता । जहाँ एक ओर हाजी मतिउल्ला, हाजी वलिउल्ला, हाजी अमीरूल्ला आदि लोग बढ़ाचढ़ाकर चंदा देते हैं वे तो अपना अस्तित्व अबाधित रखते हैं लेकिन लतीफ की बीवी कमरून अपने अस्तित्व के कारण बनती मस्जिद के लिए छागल दे आयी थी ।

प्रस्तुत उपन्यास में एक ही धर्म के दो पंथ-शिया और सुन्नी संप्रदाय में भी अस्तित्व के लिए किए संघर्ष का चित्रण मिलता है । लेकिन इन दो संप्रदायों का संघर्ष कब्रों के अस्तित्व के संदर्भ में भी दृष्टिगोचर होता है । यह संघर्ष सुन्नी समुदाय के लोगों में दिखाई देता है - ''कब्र कैसी हटेगी? और फिर कब्र के भीतर हटाने के लिए बचा ही क्या होगा? जो लोग भीतर दफन होंगे उनकी हड्डियाँ भी तो न रह गयी होंगी शेष । तब क्या हटाया जायेगा?''[2] सुन्नी समुदाय के लोगों को जिलाधीश द्वारा आदेश दिया गया था कि इमामबाड़े के पासवाली दो कब्रे हटा लें। लेकिन सुन्नी समुदाय के लोगों का मानना है कि कब्रें हटाने या मिटाने से उनका अस्तित्व नहीं मिटता । अत: कब्रों को हटाना अनुचित है । निष्कर्षत: स्पष्ट है कि सुन्नी संप्रदाय अपने अस्तित्व को अबाधित तथा सुरक्षित बनाये रखने के लिए शिया संप्रदाय तथा सरकार के विरोध में संघर्षरत है ।

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में अस्तित्व के लिए किए गए संघर्ष का चित्रण अत्यल्प मात्रा में मिलता है । जब रामवृक्ष पाण्डे जब्बार मौलवी साहब से अली अहमद के संदर्भ में पूछते हैं तो वे कहते हैं - ''आपने उस रोज अली चुड़िहार को मारा था न ... मारेंगे नहीं तो क्या पूजा करेंगे उसकी? मारेंगे नहीं तो क्या पूजा करेंगे उसकी? अरे का हो, सारी परजा आई, अउर ऊ ससुर के नाती... ।''[3] प्रस्तुत कथन से स्पष्ट है कि पंडित रामवृक्ष पाण्डे अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील है और मौलवी साहब भी अपना अस्तित्व अबाधित रखना चाहते हैं । बात इनके अस्तित्व की है लेकिन संघर्ष के परिणाम अली अहमद को भुगतने पड़ते हैं ।

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 14
2. वही, पृष्ठ - 183
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह - मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ - 47

'समर शेष है' से लेकर के 'मुखड़ा क्या देखे' के उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त हम यह कह सकते हैं कि अस्तित्व के लिए संघर्ष का चित्रण अधिकतर धर्म, जीवन और एक-दूसरे पर वर्चस्व स्थापित करना आदि बातों को लेकर हुआ परिलक्षित होता है । धर्म के अस्तित्व के कारण संघर्ष अधिक होते हैं ।

4.3.4 अर्थार्जन हेतु संघर्ष :-

अर्थ के अभाव में जीवन अर्थहीन बन जाता है । अत: अर्थ को हम समाज व्यवस्था की रीढ़ कह सकते हैं । राम आहूजा के मतानुसार - ''आर्थिक विकास के बिना सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन संभव नहीं है ।''[1] अत: मनुष्य अपने आपमें तथा समाज में परिवर्तन लाने के लिए संघर्ष करता हुआ परिलक्षित होता है ।

विवेच्य उपन्यासों में अर्थार्जन हेतु किए गए संघर्ष का चित्रण अत्यधिक मात्रा में मिलता है । 'जहरबाद' में भी प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण दृष्टिगोचर होता है । कथा-नायक के अब्बा ने तेंदू के पत्तों का स्टाक खोला था । शाहपुरवाले लाल बाबू ने उनकी आर्थिक सहायता की थी । कथा-नायक अब्बा की मद्द करता था । ''लाल बाबू ने अब्बा को सिर्फ चालीस रूपये दिये थे । - और लडके को कुछ नहीं मिलेगा?''[2] लाल बाबू सिर्फ अब्बा की मजदूरी देते हैं और दयनीय होकर अब्बा लड़के की मजदूरी की माँग करते हैं लेकिन लाल बाबू अब्बा को ही डाँटते हैं । कठोर श्रम करने के पश्चात भी अर्थ के कारण अब्बा को अपने बेटे की मजदूरी के कारण लालबाबू से संघर्ष करना पड़ता है लेकिन लाल बाबू अपनी बात पर अड़ जाते हैं ।

कथा-नायक तथा अन्य बालकों को भी अपनी कम उम्र में अर्थ के कारण संघर्ष करना पड़ता है । कथा-नायक तथा अन्य बालकों से पत्थर उठाने जैसे काम करवाये जाते थे । कथा-नायक के शब्दों में - ''मुझे निकटस्थ पतेरा से पत्थर ढोने का काम दिया गया था । प्राय: सभी बच्चों को यही काम करना होता था । हम पतेरा के भीतर घुस जाते और छोटे-छोटे पत्थर सिर पर उठाकर सड़क के किनारे तक लाकर चट्टा बनाते ।''[3] प्रस्तुत उद्धरण से लेखक इस बात की ओर ध्यान केंद्रित कराना चाहते हैं कि आर्थिक अभावों के कारण कथा-नायक जैसे

---

1. राम आहूजा - भारतीय सामाजिक व्यवस्था, पृष्ठ - 386
2. अब्दुल बिस्मिल्लाह - जहरबाद, पृष्ठ - 31
3. वही, पृष्ठ - 71

अन्य बालकों को भी संघर्ष करना पड़ता है । यहाँ हमें बाल मजदूरी की समस्या और उनकी आर्थिक विपन्नताओं का परिचय हो जाता है ।

'समर शेष है' में भी अर्थार्जन हेतु किए गए संघर्ष का चित्रण मिलता है । फूफा साहब का बड़ा लड़का कथा-नायक से कहता है - "पैसे माँगते तुम्हें शर्म नहीं आती? जितने तुम्हारे पैसे मिले हैं उससे ज्यादा का तो तुमने खाना ही खाया होगा । तुम्हें तो हमारा एहसान मानना चाहिए कि अपने घर में तुम्हें रखे हुए हैं ... ।"[1] कथा-नायक फूफा साहब के बड़े लड़के के साथ जालियाँ बनाने का काम करता था । यह काम फूफा साहब के बड़े लड़के ने स्वल्पप्रयास से लगाया था । लेकिन उस समय कथा-नायक उन्हीं के घर में रहा करता था । अक्सर कथा-नायक ने अपनी जिंदगी में कहीं भी मुफ्त का खाना नहीं खाया । वहाँ भी कथा-नायक घर के सारे काम करता था । फिर भी मजदूरी करने के पश्चात भी कथा-नायक को पैसे नहीं मिलते । स्पष्ट है यहाँ कथा-नायक और फूफा-साहब के बड़े लड़के में संघर्ष दृष्टिगोचर होता है ।

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में अर्थार्जन हेतु किए गए संघर्ष का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है । मतीन से बीनी हुई साड़ी हाजीसाहब खूब बारीक निगाह से देखते हैं। जब उन्हें साडी में बहुतसे ऐब दिखाई देते हैं तब मतीन हाजी गिरस से कहता है - "का ऐब हैं गिरस? मतीन सहमते सहमते पूछता है तो हाजी साहब और बिफर पड़ते हैं - अभइन पूछेतो कि का एब है? साड़ी पुजेती तो चेक नाँहीं करतो? उल्टे हमई से पूछेतो कि का ऐब है? देखो, एज्जन ताग, मइला है, एज्जन दाग है । हद्दे मत्ती है । दस रूपिया कम होइए !"[2] यह संघर्ष केवल अकेले मतीन का नहीं है, कई मुस्लिम बुनकर इस संघर्ष से पीड़ित हैं । बनारस के आम बुनकर आर्थिक विपन्नता के कारण अपना करघा, रेशम तथा अन्य चीजें खरीद नहीं सकते । मजबूरन उन्हें गिरसों की कोठियों में बानी पर बिनना पड़ता है । बुनकरों से बुनी हुई साड़ियों में दोष न होते हुए भी हाजी साहब जैसे गिरस दोष निकालते हैं और पैसों में मन-चाहे कटौतियाँ करते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास में मुस्लिम बुनकरों की औरतें भी अर्थार्जन हेतु संघर्ष करती हुई परिलक्षित होती हैं - "करघे पर प्राय: औरतें ही बैठा करती हैं, मर्द बाहरी काम किया करते हैं ।

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 48
2. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 17

अर्थात वहाँ बनारस में औरत की जिंदगी कतान में बन्द है और यहाँ करघे में ।''[1] मतीन काम की तलाश में जब मऊ पहुँचता है तो उसे इस प्रकार का बड़ा विचित्र अनुभव आता है । आर्थिक विपन्नताओं के कारण एक वास्तविक नारी का जीना किस प्रकार का होता है, इसका अनुभव बनारस तथा मऊ की औरतें नहीं कर पाती । इन औरतों को इतने सारे काम के अलावा घर के सारे के सारे काम करने पड़ते हैं । स्पष्ट है कि आर्थिक दयनीय स्थिति के कारण ही इन औरतों को रात-दिन करघे के साथ लड़ना-जूझना पड़ता है ।

सट्टीदारों, गिरस्तों और कोठीवालों का निरंतर चला आ रहा दमनचक्र बुनकर खंड़ित करना चाहते हैं । बनारस तथा आस-पास के सभी बुनकर संगठित होते हैं । बुनकरों की संगठित सभा का मुख्य कारण अर्थार्जन हेतु ही है । बुनकर कहते हैं - ''सभा में कटौती के खिलाफ 'एक्सन' लिया जायेगा । को-ऑपरेटिव में हो रही धाँधली के खिलाफ बोला जाएगा। फर्जी सोसाइटियों का भण्डाफोड़ किया जायेगा ... जनाब इकबाल अहमद अंसारी की तकरीर है ।''[2] मतीन का बेटा इकबाल सभा का आयोजन करता है । सभी बुनकर यह निश्चय करते हैं कि गिरस्तों कोठीवालों द्वारा होनेवाले शोषण के खिलाफ तथा बुनकरों से बुनी गयी साड़ियों में विभिन्न प्रकार के ऐब निकाले जाते हैं और कटौतियाँ चलती रहती हैं । अत: सभी बुनकर अर्थ प्राप्ति के लिए संघर्ष करते हुए परिलक्षित होते हैं ।

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में उपर्युक्त संघर्ष का चित्रण अत्यल्प मात्रा में दृष्टिगोचर होता है । यह भी हमें अली चुड़िहार में दिखाई देता है । रनिया अली से कहती है - ''गहना जेवर भी तो नहीं है । रूपिया कहाँ से पाओगे? ... भऊजी से कहेंगे कि गँवई रेहन रख लें और सौ रूपिया दे दें ।''[3] प्रस्तुत उद्धरण से स्पष्ट है कि पं. रामवृक्ष पाण्डे द्वारा अली चुड़िहार को पीटने के पश्चात तथा उनके बेटे की बुरी नियत के कारण अली बलापुर छोड़कर इलाहाबाद जाना चाहता है । लेकिन अली अर्थ के अभाव के कारण विचारों में डूब जाता है । उसके पास कुछ गहने-जेवर भी नहीं हैं । यदि गहने-जेवर होते तो रेहन रखकर कम-से-कम रूपयों का इंतजाम कर सकता था । लेकिन गहने जेवर भी न होने के कारण अंत में अली निर्णय करता है कि भऊजी से गँवई रेहन रखकर सौ रूपए ले लेता है । अंतत: स्पष्ट है कि अर्थाभाव के कारण अली

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 141
2. वही, पृष्ठ - 205
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह - मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ - 46

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

को अपनी जान के समान प्यारी गाँव-गँवई रेहन रखनी पड़ती है । इससे अली की आर्थिक संघर्षमयी स्थिति का परिचय हो जाता है ।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'जहरबाद' में अर्थार्जन हेतु किये गये संघर्ष का चित्रण कम मात्रा में मिलता है । लेकिन संघर्ष के कारण भी भिन्न भिन्न मिलते हैं । 'समर शेष है' में प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण अत्यल्प मात्रा में और 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण पर्याप्त मात्रा में हुआ है । मुस्लिम बुनकरों के द्वारा गिरसों के खिलाफ अर्थार्जन हेतु संघर्ष दृष्टिगोचर होता है । 'मुखड़ा क्या देखे' में प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण अत्यल्प मात्रा में मिलता है ।

4.3.5 अन्याय के विरूद्ध संघर्ष :-

समाज में सदियों से उच्चवर्गीयों द्वारा निम्नवर्ग तथा सर्वहारा वर्ग का शोषण होता आ रहा है । सर्वहारा तथा निम्नवर्ग भी अन्याय तथा शोषण के खिलाफ संघर्ष कर रहा है । डॉ. बेनीपुरी की दृष्टि में - ''जब तक मनुष्य मात्र के प्रति मनुष्य के हृदय में प्रेम का भाव अविर्भूत न हो; मनुष्यता कैसी टिकेगी - कहीं व्यक्ति कहीं समाज और कहीं राष्ट्र एक दूसरे का शोषण करेंगे ही ।''[1] इस कथन से विदित होता है कि जब तक समाज में मानवतावादी दृष्टि का अभाव रहेगा तब तक एक-दूसरे का शोषण होता ही रहेगा और शोषित भी अन्याय को नहीं सह पाऐंगे और शोषकों के प्रति संघर्ष करते रहेंगे ।

विवेच्य उपन्यासों में अन्याय के विरूद्ध हुए संघर्ष का चित्रण अधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होता है । 'समर शेष है' उपन्यास में भी प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण मिलता है ।

कथा-नायक को अपने संघर्षमयी जीवन में अनेक समस्याओं से गुजरना पड़ा । कथा-नायक के अपने शब्दों में - ''खुद को इतना उदार बनाना पड़ा की बहिन ने जब बच्चों की टट्टी-भरी फलिया साफ करने के लिए दी, तो मैं इनकार नहीं कर सका ।''[2] कथा-नायक का अपनी ही बहन से भी शोषण होता है । लेकिन उसके सामने और गंभीर समस्याएँ खड़ी थीं । इसीलिए बिना कुछ किए वह अन्याय को सहता रहता है । प्रस्तुत उपन्यास में अधिकतर शोषण

---

1. डॉ.प्रभा बेनीपुरी - बेनीपुरी जी के नाटकों में सामाजिक चेतना, पृष्ठ - 133
2. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 28

अपने ही परिवार जनों के सदस्यों से हुआ दृष्टिगोचर होता है ।

'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में अन्याय के विरूद्ध संघर्ष का चित्रण काफी मात्रा में मिलता है । लेखक बनारस के बुनकरों पर होनेवाले अन्याय का विवेचन करते हुए लिखते हैं - ''देर से पहुँचने पर 'सकाड़े' से पिटाई होती थी और अगर कभी कोई गलती हो जाती तो जिस हाथ से गलती होती उसी हाथ पर 'ढरकी' से मारा जाता । गाली ऊपर से, 'साले! भोसड़ियावाले'...''[1] इस प्रकार हाजी गिरस द्वारा तथा अन्य कोठीवालों से मुसलमान मजदूर बुनकरों पर अन्याय होता था । हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं कि काम के बदले मजदूरी की अपेक्षा इन गरीब बुनकरों को इस भयानक परिस्थिति का सामना करना पड़ता था । पीढ़ी-दर-पीढ़ी बुनकर इस अन्याय को सहते आये लेकिन बुनकरों की नयी पीढ़ी अन्याय तथा शोषण के खिलाफ संघर्ष करती हुइ दृष्टिगत होती है। नयीं पीढ़ी के उठाए गए आंदोलनों ने ही काशी के बुनकरों की जिंदगी में आज परिवर्तन आया है और वे आज अपने सभी अधिकारों के प्रति सजग हो गए हैं ।

बनारस तथा बनारस के आस-पास के सभी मुस्लिम बुनकर गिरसों से होनेवाले अन्याय से चिंतित हैं । मतीन बुनकर बन्धुओं का प्रतिनिधित्व करता है और कहता है - ''हाजी अमीरूल्ला का गढ़ तोड़ना है । लोगों का गला काट-काटकर बच्चू ने बड़ा धन जोड़ा है । देखते हैं अब कौन बिनता है उनके यहाँ की साड़ी? सब अपना-अपना बिनेंगे और अपना अपना बेचेंगे । अभी तक हमारी मेहनत की रोटियाँ इन मुठल्लों ने खायी हैं, अब हम खुद खायेंगे ।''[2] मतीन बुनकरों का तथा गिरसों के द्वारा होनेवाला शोषण तथा अन्याय के खिलाफ संघर्ष करके एक को-ऑपरेटिव सोसायटी बनाना चाहता है जिससे बुनकरों को गिरसों, कोठीवालों द्वारा होनेवाला अन्याय न सहना पड़ें । मतीन हर-दम अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करता हुआ परिलक्षित होता है । वह अपने ही अनपढ बुनकर भाइयों को समझाता है कि किस प्रकार हाजी साहब जैसे गिरसों से आपका शोषण होता है । इसलिए वह अन्याय का गढ़ तोड़ना चाहता है । मतीन अपनी उम्र की अंतिम अवस्था तक इन गिरसों और बिचौलियों के खिलाफ अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करता है । लेकिन उसके अनेक प्रयासों के पश्चात भी वह संघर्ष में असफल होता है ।

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 11
2. वही, पृष्ठ - 21

मतीन अपने पूरे जीवन में अन्याय के खिलाफ उठाई हुई संघर्ष की मशाल को अपने बेटे इकबाल के हाथों सौंप देता है । उसे आशा है कि जो सफलता मतीन हासिल नहीं कर पाया वह सफलता इकबाल जरूर हासिल करेगा । इकबाल बुनकरों को इकट्ठा करके कहता है - ''आप लोगों की साड़ियों में तरह-तरह के ऐब निकालकर आपकी मजूरी कम कर दी जाती है और अब तो कटौती का नया ही चक्कर चल गया है। साड़ी पीछे बिला वजह बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस रूपये काट लिए जाते हैं, जिसका राज कोई नहीं जानता ! इसके लिए हमें एक होकर लड़ना चाहिए ।''[1] इकबाल पढ़ा-लिखा है । वह अन्य बुनकरों को इकट्ठा करता है, उन्हें अपने श्रम का एहसास दिलाता है । वह अन्याय तथा शोषण के खिलाफ संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित करता है । अनपढ़ मुसलमान बुनकर इकबाल की बातों को समझते हैं । इकबाल के भाषण से बुनकरों के मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है, वे सोचने लगते हैं कि इतने परिश्रम से बुनी साड़ियाँ देश-विदेश में जाती हैं। उसका लाभ गिरस कोठीवालों को होता है और हमारी जो औरतें हैं अपनी हाथों से बुनी रेशमी साड़ी को नहीं पहन पाती । यह सरासर जुल्म है । सभी मुसलमान बुनकर इकबाल का साथ देते हैं और हाजीसाहब, गिरसों, कोठीवालों, बिचौलियों के खिलाफ संघर्ष करते हुए परिलक्षित होते हैं ।

बनारस के बजरड़ीहा नामक मुहल्ले के मुस्लिम बुनकरों पर हुए अन्याय का चित्रण करते हुए रघुवीर सहाय ने लिखा है - ''हिंदुओं को हाथ से इशारा करके आगे बढ़ने को कह रहे थे; बल्कि के.पी.सिंह ने एक आदमी के हाथ से आग छीनते हुए कहा कि 'साले आग ऐसी लगायी जाती है', और स्वयं ही एक मकान में आग लगाई ।''[2] के.पी.सिंह एक पुलिस अफसर हैं जो रक्षक की जगह भक्षक बनके सामने आते हैं । बुनकर अन्याय के खिलाफ संघर्ष तो करते हैं लेकिन कानून इन लोगों के हाथों में होने के कारण अवरोध आता है । बिस्मिल्लाहजी हाजी साहब तथा अन्य गिरसों का चित्रण इस प्रकार करते हैं - ''इन्होंने सारा कानून-कायदा अपनी मुठ्ठी में बन्द कर रखा है । लगभग सभी बड़े गिरस्तों ने नकली सोसाइटियाँ बनायी है और आम बुनकर का माल खुद लेकर उसे को-ऑपरेटिव के जरिये ऊँचे दामों में बेचकर पूरा मुनाफा हजम कर जाते हैं । इकबलवा का कहना है कि इसके खिलाफ हमें लड़ना होगा ।''[3] इन दोनों

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 184
2. रघुवीर सहाय - वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे, पृष्ठ - 107
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 187

उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि उच्च वर्गीय लोग कायदे-कानूनों को मुठ्ठी में बंद करके सर्वहारा वर्ग का शोषण करते हैं और भ्रष्ट नीति अपनाते हैं ।

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण अत्यल्प मात्रा में दृष्टिगोचर होता है । पनवाड़ी के पूछताछ के पश्चात अली अहमद कहने लगता है - ''हम आए हैं पंडित जवाहरलालजी से मिलने के वास्ते । हमारे गाँव में एक बाम्हन है, रामवृक्ष पाण्डे । बहुत जालिम हैं। हमें बेबात के मारा है । वही आए हैं सिकायत करने।''[1] पं. रामवृक्ष पाण्डे एक बडे जमींदार थे । उन्हें क्रोध इस बात का था कि अली अहमद उनकी बेटी की शादी में नहीं जाता । घर में अली अहमद की पत्नी बीमार होने के कारण वह लता की शादी में नहीं जाता और अपनी भऊजी को ही चूड़ियाँ पहनने को उनके घर भेजता है । पाण्डे जी को लगता है पूरा गाँव-का-गाँव मेरी इकलौती बेटी की शादी में आता है और एक मुसल्ला नहीं आता है । वे उसे बहुत मारते-पीटते हैं । वह सरासर अली-अहमद पर अन्याय हुआ था । वह अन्याय के खिलाफ संघर्ष करने की आशा में उस समय के प्रधानमंत्री जवाहरलालजी से मिलने के लिए जाता है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण अत्याधिक मात्रा में और अन्य दो उपन्यास 'समर शेष है' और 'मुखड़ा क्या देखे' में कम मात्रा में दृष्टिगोचर होता है । तीनों उपन्यासों के पात्र अन्याय के विरूद्ध संघर्ष तो करते हैं लेकिन वे संघर्ष में काफी सफलता नहीं पाते ।

4.3.6 आपसी संघर्ष :-

विवेच्य उपन्यासों में प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण अधिक मात्रा में दिखाई देता है । डॉ. राधाकृष्णन् के मतानुसार - ''मनुष्यों में आपसी झगड़ों का अंकुर उस पद्धति से पैदा होता है जिसके अनुसार विभिन्न समूहों के व्यक्ति दूसरों के संबंध में अपनी धारणा बना लेते हैं । कर्तव्य और न्याय के अपने आदर्शों को दूसरों से श्रेष्ठ समझते हैं ।''[2] विवेच्य उपन्यासों में आपसी संघर्ष का मूल भी यही दृष्टिगोचर होता है ।

'जहरबाद' उपन्यास में आपसी संघर्ष का चित्रण कम मात्रा में मिलता है । यह

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ - 39
2. डॉ. सर्वेपल्ली राधाकृष्णन् - हमारी विरासत, पृष्ठ - 100
   अनुवादक - विजयकुमार मल्होत्रा (Our Heritage)

लेखक का आत्मकथात्मक उपन्यास है । अम्माँ अब्बा से कहती है - ''काम न धन्धा बस दिन-रात बंसी के पीछे... खाली मछली खाके पेट भरेगा न ... लाज नहीं आती कि महरिया कमाये और मरद बैठकर खाये...''[1] ''अम्माँ की इस बात को अब्बा नहीं सह सके । बंसियाँ उन्होंने आँगन में फेंक दी और भीतर जाकर अम्माँ को पीटने लगे ।''[2] अम्माँ टोपरे में गुड़, बीड़ी, तमाखू आदि चीजें भरकर गँवई करती थी और पैसे लाती थी । लेकिन अब्बा मछली पकड़ने के सीवा और दूसरे काम ही नहीं करते थे । एक दिन अम्माँ अब्बा पर उखड़ जाती है और कुछ उल्टी-सीधी बातें कहती है । अब्बा अम्माँ की बात को चुपचाप सुनते रहे और अचानक क्रोध में आकर पीटने लगे । स्पष्ट है यहाँ हमें पति-पत्नी में आपसी संघर्ष दृष्टिगोचर होता है ।

अक्सर अब्बा और अम्माँ में झगड़े होते थे । एक दिन कथा-नायक कहता है - ''ईद आयी तो अपने साथ एक कटुता लेकर आयी । पता नहीं किस बात को लेकर ऐन ईदवाले दिन अब्बा और अम्माँ में लड़ाई हो गयी ।''[3] मुस्लिम समाज में ईद का त्यौहार बडे धूमधाम से मनाया जाता है । जैसे-जैसे ईद नजदीक आती है उतनी खुशियाँ बढ़ती हैं । कथा-नायक भी बहुत कुछ आकांक्षाओं को लेकर बैठता है । वह सोचता है ईदवाले दिन कपड़े बनेंगे आदि-आदि । लेकिन ईद के ही शुभ अवसर पर उसके अपने घर में सामने ही अब्बा और अम्माँ की लड़ाई होती है । मैं समझता हूँ इनके आपसी संघर्ष का मुख्य कारण आर्थिक ही रहा होगा ।

'समर शेष है' उपन्यास में आपसी संघर्ष का चित्रण अधिक मात्रा में मिलता है । कथा-नायक रहमतुल्ला से प्रश्न करता है - ''गुड्डू की अम्मा इतनी मेहनत करती है, तुम कोई काम क्यों नहीं करते?''[4] कथा-नायक का प्रश्न सुनने के पश्चात रहमतुल्ला खामोश रहता है और उसकी बीवी बोलने लगती है - ''ये कुछ नहीं करते भैया, मैं कुछ कहती हूँ तो भद्दी-भद्दी गालियाँ देते हैं और ज्यादा कुछ कहती हूँ तो डंड़ा खाना पड़ता है । क्या करूँ?''[5] स्पष्ट है यहाँ भी हमें जो संघर्ष दृष्टिगोचर होता है वह पति-पत्नी के रूप में ही दिखाई देता है । रहमतुल्ला काम-धाम कुछ नहीं करता और बीवी की कमाई पर ही निर्भर है। यदा-कदा पत्नी काम करने के लिए कह देती है तो वह उसे मारता-पीटता है । रहमतुल्ला के पास कभी-कभी बीड़ी पीने के

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - जहरबाद, पृष्ठ - 7
2. वही, पृष्ठ - 7
3. वही, पृष्ठ - 24
4. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 30
5. वही, पृष्ठ - 30

लिए भी पैसे नहीं होते । फिर भी वह बीवी को मारता रहता है ।

कथा-नायक की जिंदगी अनेक बवंडरों का सामना करते हुए गुजरती है । वह इसी सिलसिले में लालगंज जाना चाहता था । लालगंज जानेवाली आखिरी बस चली जाने के कारण वह बस स्टेशन के प्रतीक्षालय में लेटता है । पुलिस के पुछताछ करने पर कथा-नायक उन्हें कहता है - ''देखिए साहब, मैं चोर-उचक्का नहीं हूँ । मैं एक विद्यार्थी हूँ । हाँ मैं गरीब जरूर हूँ । आप मुझे परेशान न कीजिए, आराम करने दीजिए, मैं सुबह यहाँ से चला जाऊँगा।''[1] जिन रक्षकों से हम सुरक्षा की अपेक्षा रखते हैं वे ही भक्षक बन जाते हैं । पुलिस कथा-नायक की बात को मानने के लिए तैयार नहीं थी । कथा-नायक बार-बार समझाने का प्रयास कर रहा था। अक्सर पुलिसवाले उनसे पैसे की माँग करते हैं लेकिन कथा-नायक के पास देने के लिए कुछ नहीं था ।

कथा-नायक को बीमार पड़ने पर अस्पताल में भरती किया गया । अस्पताल में आए अपने अनुभवों को कथा-नायक स्पष्ट करना चाहता है । कथा-नायक कहता है - ''वह अपने पेट को थामे हुए आया और वहाँ पहुँचकर जोर-जोर से चीखने लगा । डॉक्टर ने उसका परीक्षण किया तो वह स्वस्थ निकला और उसने उसे भरती करने से इनकार कर दिया । लेकिन वह जबरदस्ती मेरे वार्ड में घुस आया और मेरे सामनेवाले बिस्तर पर पसर गया । डॉक्टर उसे रोकने के लिए आया तो वह मच्छरदानी का डंड़ा लेकर खड़ा हो गया और अस्पताल में एक खौफनाक माहौल चीखने लगा ।''[2] प्रस्तुत उद्धरण से हमें डॉक्टर और युनिवर्सिटी के एक बदमाश छात्र का संघर्ष दृष्टिगोचर होता है ।

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में आपसी संघर्ष का चित्रण प्रचुर मात्रा में मिलता है। लेखक ने आपसी संघर्ष का चित्रण बहुतही संवेदनशीलता से किया हुआ परिलक्षित होता है । बनारस के कब्रस्तान में लड़कों में क्रिकेट मैच खेला जा रहा था । लतीफ अपने लड़के को ढूँढ़ने के सिलसिले में कब्रस्तान की ओर आता है और देखता है - ''लडके एक जगह जमा हैं और चिल्ला-चिल्लाकर बातें कर रहे हैं - ... बुरचोदी के हट, चलेंने अउट कर के ! ''एकरी बहिन के ... छोड़बे कि नाँही बे?'' इस बीच एक लड़का किसी के हाथ से बैट छीन लेता है और शुरू

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 111
2. वही, पृष्ठ - 159

हो जाता है युद्ध ! छीना-झपटी, मार-पीट । देखते ही देखते हिन्दुस्तान-पाकिस्तान में बुरी भिड़न्त हो जाती है ।''[1] इस कथन से स्पष्ट होता है कि लडकों के मामूली क्रिकेट मैच के कारण आपस में झगड़े होते हैं और इन आपसी संघर्ष का परिवर्तन थोड़े ही समय में सांप्रदायिकता में बदल जाता है । उपन्यासकार का दृष्टिकोण यही है कि आपसी संघर्षों के कारण किस प्रकार सांप्रदायिक जंग छिड़ जाती है जिसमें अनेक लोग मारे जाते हैं । इसमें कई निरपराध भी मारे जाते हैं ।

हाजी साहब अपने बेटे से कहते हैं - ''कबे भोसड़ियावाले सुनते काही नाँही बे । तोरी का करो मैं । पढ़ेतेन अनवरसीटी में भोसडी के अउर अक्कल बुरचोदी के छटाँक-भर नँहिने ! घर क एकठे काम नाँही कर सकेतेन ।''[2] हाजी साहब अपने बेटे की सिकायत उनके मास्टर साहब से करते हैं । शरफुद्दीन हाजी साहब के बार-बार कहने पर भी सुनता नहीं । शरफुद्दीन भी युनिवर्सिटी में पढ़ता है । बाप के कहने पर भी सुनता नहीं है । यहाँ हमें बाप-बेटे में आपसी संघर्ष दृष्टिगोचर होता है ।

बनारस तथा उसके आस-पास जितने भी सांप्रदायिक दंगे हुए वे आपसी संघर्ष के मूल हैं । सिनेमाघर में हुई घटना का विवेचन करते हुए लेखक कहते हैं - ''...उस रोज फिल्म हॉल के भीतर बड़ी बेरहमी के साथ औरतों को बेइज्जत किया गया और उनमें से कइयों को मार डाला गया । देखते-ही देखते मदनपुरा और रेवड़ी तालाब से लेकर चौक होती हुई यह आग जैतपुरा, छोहरा, अलईपुरा और उधर चौहट्टा लालखाँ तक पहुँच गयी।''[3] बनारस के एक सिनेमाघर में 'गरीब निवाज' नाम की फिल्म चल रही थी । उसमें बुर्का पहनकर आयी औरतें अधिक थीं । वहाँ का फिल्म उद्योग वहाँ के आवारों और स्त्रियों के बल पर चलता है । कभी-कभी दिग्दर्शक हिंदू स्त्रियों का भावनात्मक लाभ उठाने के लिए 'संतोषी माता' जैसी फिल्म बनाते हैं तो कभी 'गरीब निवाज' जैसी फिल्म दिखाते हैं और कहते हैं कि जिस प्रकार अभिनेत्री के दिनों में परिवर्तन आया वैसा आपमें भी आएगा। लेकिन सिनेमा घर में आपस में संघर्ष छीड़ जाता है जिसके सूत्रधार वहीं के आवारा लोग होते हैं ।

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में भी आपसी संघर्ष का चित्रण दृष्टिगोचर होता है ।

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 33
2. वही, पृष्ठ - 59
3. वही, पृष्ठ - 163

मौलवी साहब अली से कहते हैं - ''देखो अल्ली, मैंने धूप में अपने बाल नहीं सफेद किए हैं । तजुर्बा है मुझे जिंदगी का । कोई शख्स बिलावजह किसी को क्यों बेइज्जत करेगा?''[1] मुसलमान दुनिया के हर मुसलमान को अपनी बिरादरी का समझता है । पं. रामवृक्ष पाण्डे से पीटने पर अली अहमद जब्बार मौलवी साहब के पास जाता है और बहुत गुस्से के साथ सारी घटना का विवरण देने लगता है। मौलवी साहब अली अहमद की बातों को सुनने के बजाय कहते हैं - ''तुम मेरी बात ही नहीं सुन रहे हो, बस अपनी ही हाँके जा रहे हो । अरे, भाई, पंडितजी कोई ऐसे वैसे आदमी तो है नहीं । इलाके के मानिंद आदमी हैं वो ।''[2] मौलवी साहब अपनी जाति के होने के कारण अली उनके पास जाता है लेकिन अली की समस्या का समाधान होने के पश्चात मौलवी साहब और अली में आपसी संघर्ष छीड़ जाता है ।

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'जहरबाद' में प्राप्त संघर्ष का मुख्य कारण आर्थिक है । ठीक इसके अनुसार का चित्रण 'समर शेष है' में प्राप्त होता है । 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में आपसी संघर्ष का अलग रूप परिलक्षित होता है । इसमें आपसी संघर्ष का मूल आर्थिक, सांप्रदायिक दिखाई देता है ।

4.3.7 तलाक पीड़ित महिला का संघर्ष :-

मुस्लिम समाज की बहुतसी औरतों को विवेच्य संघर्ष का सामना करना पड़ता है । मुस्लिम समाज में तलाक कोई नई चीज नहीं है । राम आहूजा के मतानुसार - ''हम समझते हैं कि तलाक एक आवश्यक बुराई है (necessary evil) है ।''[3] इसे स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं - ''कभी-कभी ऑपरेशन ही जीवन को गंभीर बीमारी या कष्ट से बचाने का एकमात्र उपाय रह जाता है । इसी प्रकार तलाक के द्वारा व्यक्तित्व विघटन से व्यक्ति को बचाया भी जा सकता है ।''[4]

विवेच्य उपन्यासों में तलाक पीड़ित महिलाओं का संघर्ष पर्याप्त मात्रा में मिलता है। तलाक पीड़ित महिलाओं की दयनीय अवस्था को प्रस्फुटित करते हुए डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा है - ''तलाक एक ऐसी उग्र औषध है जो व्यक्ति के अपने जीवन को तो जड़ से हिला ही

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ - 32
2. वही, पृष्ठ - 32
3. राम आहूजा - भारतीय सामाजिक व्यवस्था, पृष्ठ - 174
4. वही, पृष्ठ - 174

देती है, साथ ही दूसरों के जीवनों पर भी प्रभाव डालती है ।''[1] प्रस्तुत उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि तलाक के कारण पूरा-का-पूरा जीवन ध्वस्त हो जाता है । विवेच्य उपन्यासों में प्राप्त तलाक पीड़ित महिला के संघर्ष का चित्रण इस प्रकार है -

अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'जहरबाद' उपन्यास में विवेचित संघर्ष का चित्रण कम मात्रा में क्यों न हो लेकिन अवश्य प्राप्त होता है । कथा-नायक कहता है - ''अम्माँ का तलाक हो गया था। अब वे हम लोगों से अलग रहने लगी थी । चूँकि मुझे देखे बिना वे रह नहीं सकती थी... अत: अत्यन्त दीनतापूर्वक उन्होंने अब्बा से उन्हीं की मड़ैया में अपने लिए शरण माँगी थी।''[2] कथा-नायक के अब्बा अम्माँ को एक छोटी सी जगह देते हैं जिसमें अम्माँ अपनी नयी गृहस्थी जमाती है - ''गृहस्थी कोई खास नहीं थी, पता नहीं कहाँ से थोड़े-से बर्तन वे माँग लायी थी जिनसे पकाने खाने का काम चलाती थीं ... ओढने-बिछाने के लिए उनके पास एक कथरी और एक फटी-सी चादर भर थी । उन्हीं वस्त्रों में गुड़ी-मुड़ी लिपटकर वे रात काट लिया करती थी और प्रात: होते ही न जाने कहाँ निकल जाती थी ।''[3] कथा-नायक की अम्माँ का जीवन तलाक के बाद उद्देश्यहीन हो जाता है । उसके जीवन में उत्साह नाम की कोई चीज शेष नहीं रह पायी थी । केवल चरित्रहीनता का आरोप लगाकर अम्माँ को तलाक दिया गया था । अम्माँ का जीवन तलाक के बाद ध्वस्त हो चुका था । वह पागल की तरह घूम रही थी ।

कोटवार के कहने पर कथा-नायक को मालूम हो जाता है और वह उसके साथ जंगल की ओर जहाँ ''एक घाटी में पकरी के एक पेड़ के नीचे अम्माँ टेढ़ी-मेढ़ी होकर पड़ी थी । मुँह उनका खुला था और कत्थे-रँगे दाँत फैले हुए थे । पेट पिचक गया था तथा टाँगो पर से धोती सरक गयी थी। उनके विषैले जिस्म पर मक्खियाँ भिनभिना रही थी ।''[4] अम्माँ कि इस दयनीय अवस्था को देखकर कथा-नायक की आँखों से अपने-आप आँसू बहने लगते हैं । वह अनुभव करता है कि आँखों से बहनेवाले आँसू, आँसू नहीं बल्कि अभिशप्त और उपेक्षित जिंदगी का जहर है ।

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण अधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होता है । लतीफ से कमरून को दिए गये तलाक के कारण का विवेचन करते हुए बिस्मिल्लाह

---

1. डॉ. सर्वेपल्ली राधाकृष्णन् - धर्म और समाज, पृष्ठ - 191
2. अब्दुल बिस्मिल्लाह - जहरबाद, पृष्ठ - 98

लिखते हैं - ''... सुना कि लतीफ ने परसों ताड़ी नहीं, गोलगड्डा मार्का पिया था । और ठर्रे के नशे में झूमता हुआ जब वह घर पहुँचा तो कमरून लेटी हुई थी । उसके पेट में दर्द था । इसने उसे झँझोड़कर उठाया तो वह कराह उठी और ना-नुकुर करने लगी । इस पर इसने पिटाई की उसकी। सुबह कमरून जब चाय-रोटी लेकर इसके पास पहुँची तो इसे रात की बात याद आ गयी और इसने चाय रोटी के बदले दो-तीन झापड़ जमा दिये उसे । ... इसने फिर उसे झँझोड़कर उठाया तो वह भड़क उठी, उसने भी कुछ उल्टा सीधा कह दिया । बस इसने उसे तलाक दे दिया और साढ़े बत्तीस रूपये निकालकर उसके आगे फेंक दिये ।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि तलाक के कारण निरपराध स्त्रियों को विभिन्न तथा अनगीनत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । लतीफ का एक दिन का नशा एक और कमरून की जिंदगी के नक्शे को कुछ क्षणों में बदल देता है । कमरून को बेसहारा अकेली जिंदगी जीनी पड़ती है ।

मतीन के गाँव लौटने पर अलीमुन उसे सुनाने लगती है - ''रेहनवा का तलाक हुआ और किस तरह वह नइहर में आकर बदतर हालत में रहने लगी । जिन्न ने उसके पूरे जिस्म को चूस डाला था । सिर्फ हड्डियाँ ही बच रही थीं । ... आखिर में उसने चारपाई पकड ली और आज रात को बेचारी चल बसी ।''[2] बसीर की बेटी रेहनवा पहले से जिन्नग्रस्त थी । लेकिन लतीफ द्वारा दिया गया तलाक रेहनवा के लिए उसकी जिन्नग्रस्त जिंदगी के लिए बढ़ावा था । जिसके कारण रेहनवा का देहान्त हो जाता है । नजबुनिया को भी ठीक इसी प्रकार तलाक दिया जाता है । मतीन सारे दृष्य को देखने के उपरान्त कहता भी है, तलाक आम बिरादरी में प्रथा बन गयी है । लेकिन तलाक की इस प्रथा का परिणाम विकराल सिद्ध होता है । श्री अनिल देशपांडे ने कहा है कि तलाक के कारण ''कई महिलाओं और युवतिओं को अपनी रोजी-रोटी तथा निर्वाह के लिए वेश्या व्यवसाय की ओर जाने के लिए बाध्य होना पड़ता था ।''[3]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'जहरबाद' में प्राप्त प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण तथा 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में प्राप्त संघर्ष में भिन्नता परिलक्षित होती है। इन दोनों उपन्यासों में प्राप्त तलाक पीड़ित महिला के संघर्ष की जड़ जीवन की विभिन्न कठिनाइयाँ हैं । इसमें निरपराध स्त्रियों को भी संघर्ष का सामना करना पड़ता है ।

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 50
2. वही, पृष्ठ - 145-146
3. सं.प्रतापसिंह ग. जाधव - दै.पुढारी (कोल्हापुर), दि. 17 दिसंबर, 2000, पृष्ठ - 8

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

4.3.8 नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में संघर्ष :-

विवेच्य उपन्यासों में प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण अत्यल्प मात्रा में मिलता है । अक्सर नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का संघर्ष परंपरा से चला आ रहा है । अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण दृष्टिगोचर होता है । नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष को तथा कारणों को स्पष्ट करते हुए लेखक कहते हैं - ''तैयारी सिर्फ नमाज की ही नहीं इस साल तैयारी लड़ाई की भी हो रही है । पुरानी बाइसी और नयी बाइसी में भिड़ी हुई है । जब से नयी बाइसी बनी है तभी से चौका पर के जुम्मे को लेकर विवाद खड़ा हुआ है । और कुछ नहीं, झगड़ा उस मैदान का है जहाँ नमाज होती है ।''[1] नयी बाइसी के प्रतिनिधी हैं हाजी अमीरूल्ला । हाजी अमीरूल्ला उस मैदान के याने चौकाघाट के मालिक, हकदार है और जो पुरानी बाइसी के मुखिया है वे चाहते हैं 'पियाला' की नमाज चौकाघाट के मैदान में पढ़ी जाए। लेकिन नयी बाइसी के प्रतिनिधि रफीकुज्जमाँ चाहते हैं कि नमाज मस्जिदों में ही पढ़ी जाए । इस विवाद को लेकर नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में संघर्ष दृष्टिगोचर होता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नई पीढ़ी तथा नयी बाइसी और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष का मुख्य कारण धार्मिक त्यौहार 'पियाला' तथा नमाज पढ़ने की जगह ही रही है । इसी कारण दो पीढ़ियों में संघर्ष प्रस्फुटित होता है ।

4.3.9 अकाल पीड़ितों का संघर्ष :-

भारतवर्ष कृषकों का देश है और अधिकतर जनता गाँवों में निवास करती है । उनका जीवन प्रकृति पर निर्भर है । भारत की जनता सदियों से अकाल, बाढ़ जैसी अनेक प्राकृतिक आपत्तियों से संघर्ष करती आयी है और यह संघर्ष अमीट है ।

विवेच्य उपन्यासों में अकाल पीड़ितों का संघर्ष कम मात्रा में प्राप्त होता है । 'जहरबाद' में विवेचित संघर्ष का चित्रण अत्यल्प मात्रा में क्यों न हो लेकिन अवश्य मिलता है । बलापुर में पड़े अकाल का चित्रण करते हुए लेखक लिखते हैं - ''चारों ओर अकाल पड़ गया ।

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 28

भयानक भुखमरी। किसानों ने अनाज दबा लिए और बाजारों में चीजें महँगी हो गयी । ... चमड़ों की अब भरमार थी, पर पूँजी न होने के कारण अब्बा के लिए सब व्यर्थ था । अम्माँ का टोपरा भी सूना हो गया था । सारी चीजें उधारी में चली गयी थी । और खाने के लिए घर में भूँजी भाँग भी नहीं थी ।''[1] अकाल यह एक ऐसी बीमारी है जो कभी-कभार ही आती है लेकिन अनेक लोगों की जिंदगी उखाड़ देती है । किस प्रकार एक मुस्लिम परिवार अकाल से संघर्ष करता हुआ जीवन जीता है इसका विवेचन बिस्मिल्लाहजी ने प्रस्तुत कथन से किया है । कथा-नायक के पिताजी न तो किसान थे, न जमीनदार। उनका अपना छोटासा चमड़े का व्यापार था। अकाल के दिनों चमड़ा तो सस्ता था लेकिन आर्थिक विपन्नता के कारण वे चमड़ा खरीदने में असमर्थ थे । अत: उनका पूरा परिवार उनपर निर्भर था । अम्माँ का टोपरा भी सूना हो जाता है। इनके सामने भूखो मरने की नौबत आती है । अम्माँ कही से भूट्टे माँगकर उबालकर खिलाती रही । लेकिन यह संघर्ष बहुत दिनों तक चलता ही रहा । इस विवेचन से स्पष्ट है कि अकाल की भयावह बीमारी के कारण एक मुस्लिम परिवार संघर्ष करता हुआ जीवन-यापन करता है ।

'समर शेष है' में भी प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण कम मात्रा में किंतु अवश्य मिलता है। ''उस वर्ष ... चारों ओर भयंकर अकाल पड़ गया । खेत सब सूखे पड़े रहे । कुएँ भी सुख गए। नदी सुख गई । और भूख और प्यास से पशु ही नहीं, मनुष्य भी मरने लगे । वमन चाटकर और नवजात शिशु को भून-खाकर पेट भरने के समाचार भी मिले और पूरा-का-पूरा इलाका अकाल की विभीषिका से थर्रा उठा ।''[2] अकाल के दिनों में अनेक लोगों की जाने चली गयी । उन दिनों मनुष्य-मनुष्य न रहकर जानवर बन गए थे । जिस प्रकार बडी मछली अपने पेट के सवाल को मिटाने के लिए छोटी मछली को खा जाती है । ठीक उसी प्रकार अकाल पीड़ित लोग नवजात शिशुओं को भी भूनकर अपना पेट भरने में जूट गए थे ।

कथा-नायक प्रधानमंत्री से दरख्वास्त करता है ''कि इस क्षेत्र की जनता अकाल से किस प्रकार पीड़ित है और अधिकारी वर्ग किस प्रकार उसका शोषण कर रहा है, कैसे रक्षक ही भक्षक बन बैठे हैं ।''[3] उस समय देश की प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी थी । इलाहाबाद-बलापुर, लालगंज आदि इलाके में अकाल पड़ा था और वहाँ की जनता अकाल से इतनी त्रस्त थी कि

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - जहरबाद, पृष्ठ - 69
2. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 67
3. वही, पृष्ठ - 76

कल्पना ही नहीं कि जा सकती । सरकार द्वारा राशन की व्यवस्था की गयी थी लेकिन यह राशन अकाल-पीड़ितों तक नहीं पहुँच रहा था । एक ओर नेताओं, अधिकारियों के घर अनाज से भरे जा रहे थे तो दूसरी ओर जनता भूख से परेशान थी । अधिकारी वर्ग रक्षक के बजाय भक्षक बना था । अत: कथा-नायक अकाल पीड़ित इलाके के लोगों की संघर्षमयी जिंदगी का परिचय प्रधान-मंत्री से कराना चाहता हुआ परिलक्षित होता है ।

उपरोक्त विवेचन के पश्चात स्पष्ट हो जाता है कि एक ओर अकाल पीड़ित जनता अपनी समस्या को हल करने में असमर्थ है और दूसरी ओर अधिकारी वर्ग अकाल पीड़ित स्थिति का लाभ उठाते हैं ।

4.3.10 शैक्षिक संघर्ष :-

शिक्षा जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है । विवेच्य उपन्यासों में शिक्षा के क्षेत्र में भी संघर्ष दृष्टिगोचर होता है । यह संघर्ष पर्याप्त मात्रा में मिलता है । 'जहरबाद' में शैक्षिक संघर्ष का चित्रण प्राप्त है । कथानायक के अपने शब्दों में - ''छुट्टी के दिन मेरे लिए बेहद कष्टकारक थे । सिवा ऊबने के और कोई काम घर में मेरे लिए नहीं था ।''[1] दरअसल छुट्टी के दिनों का मजा अलग होता है । लेकिन कथानायक छुट्टी के दिनों में भी परेशान है । पूरी छुट्टियाँ सोच विचार में चली जाती हैं । घर की आर्थिक विपन्नताओं के तथा परिस्थिति के कारण छुट्टी के दिनों में भी वह अम्माँ और अब्बा के प्यार से वंचित रहता है । अर्थाभाव के कारण दोनों काम पर चले जाते और कथानायक छुट्टी के दिन संघर्षमयी अनुभव करता है ।

'समर शेष है' में भी प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण मिलता है । कथा-नायक अपने शैक्षिक संघर्षमयी जीवन का परिचय खुद देता है - ''अम्माँ का 'भोपाली गजरा' एक सौ पचीस रूपए में बिका और लगभग अस्सी रूपए देकर मैंने बी.ए. में अपना दाखिला करा लिया ।''[2] कथा-नायक की इंटर तक की पढ़ाई भी ऐसी ही कठिन अवस्था में हुई थी । लेकिन आगे पढ़ाई में अर्थ महत्त्वपूर्ण रहा । वह बहुत दिनों तक पढ़ने की इच्छा होते हुए भी नहीं पढ़ सका । बी.ए.में प्रवेश पाने के लिए सिर्फ अस्सी रूपयों की आवश्यकता थी लेकिन कथा-नायक अपने

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - जहरबाद, पृष्ठ - 61
2. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 112

रिश्तेदारों से अस्सी रूपए जुटाने में असमर्थ रहा । फिर उसके दिमाग में अम्माँ के गजरे की बात याद आती है । कीमती गजरा वह पैसों की आवश्यकता हेतु कम दामों में बेच डालता है । कवि मैथिलीशरण गुप्त ने कुछ साल पहले ठीक ही कहा था - ''अधपेट रहकर काटते हैं मास के दिन तीस वे, पावें कहाँ से पुस्तकें, लावें कहाँ से फीस वे?''[1] कथा-नायक की अवस्था भी ठीक इस कथन के अनुसार ही दिखाई देती है ।

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में भी शैक्षिक संघर्ष का चित्रण अवश्य दिखाई देता है। इस उपन्यास में प्राप्त संघर्ष का रूप अलग है । जैसे - ''स्टूडेण्टस् युनियन ने एडमीशन के मामले को लेकर कल वी.सी. के बँगले पर प्रदर्शन किया था और कैम्पस का माहौल तनावपूर्ण हो गया था ।''[2] इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि एडमीशन के मामले को लेकर विश्वविद्यालय में कुछ गड़बड़ी जरूर हुई थी । एडमीशन की गड़बड़ी के खिलाफ सब छात्र वी.सी. के बंगले पर प्रदर्शन करके अपना संघर्ष व्यक्त करते हैं । शरफुद्दीन छात्रसंघ का नेता था और उसी समय उसे 'बुनकर बहुबूदी फण्ड' से 500/- का वजीफा मिलता है इसलिए वी.सी. के खिलाफ किया गया संघर्ष शिक्षा युनियन के अन्य सदस्यों ने ही किया था ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि 'जहरबाद' और 'समर शेष है' इन दोनों उपन्यासों के शैक्षिक संघर्ष की जड़ आर्थिक है । 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' का शैक्षिक संघर्ष विद्यार्थी युनियन और वी.सी. के बीच प्रस्फुटित हुआ जिसके लिए जिम्मेदार वी.सी. ही हैं ।

4.3.11 प्रादेशिक संघर्ष :-

देश विभाजन के पूर्व और पश्चात से आज तक प्रादेशिक संघर्ष चला आ रहा है । 'समर शेष है' में प्रस्तुत संघर्ष का चित्रण प्राप्त होता है । उसका जिक्र लेखक इस प्रकार करते हैं - ''पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान में युद्ध छिड़ गया था । जनरल याहिया का तांड़व नृत्य आरंभ हो गया था और विरोध में शेख मुजीबुर्रहमान की बुलंद आवाज गूँजने लगी थी । ... आजाद बांगला देश की माँग तीव्र हो गयी थी । ... मुहल्ले में खतरनाक खबरें

---

1. श्री.मैथिलीशरण गुप्त - भारत-भारती, पृष्ठ - 123
2. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 82

सनसनाने लगीं, और भयंकर युद्ध शुरू हो गया था ।''[1] प्रस्तुत प्रादेशिक संघर्ष के कारण पूर्वी पाकिस्तान के उजड़े हुए लोग बिहार और उत्तर प्रदेश की ओर जा रहे थे । जगह-जगह शरणार्थी कैंप खुलवा गए थे । लेकिन वे सब शरणार्थी कैंप भ्रष्टाचार के अड्डे बन बैठे थे । सत्यदेव त्रिपाठी ने मुस्लिमों की उस समय की अवस्था को इस प्रकार व्यक्त किया है - ''पाकिस्तान बनने के बाद हिंदुस्तानी मुसलमानों के जीवन में आये भूकम्प को हम ... देख चुके हैं ।''[2] हम अनुमान लगा सकते हैं कि प्रादेशिक संघर्ष के छीडने से आम मुस्लिम जनता की अवस्था किसी भूकम्पग्रस्तों की तरह बन जाती है । इससे स्पष्ट है कि प्रादेशिक संघर्ष किसी भी कारण से छीड़ता क्यों न हो लेकिन उसके जो परिणाम निकलते हैं वे अलगही होते हैं । गरीब मुस्लिम जनता का जीवन, जीवन न रहकर खंड़हर बन जाता है ।

निष्कर्ष -

प्रस्तुत अध्याय के समूचे अध्ययन के पश्चात जो निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं वे इस प्रकार हैं -

1. मुस्लिमों का हिंदुस्तान में आगमन आक्रमणकारियों के रूप में छठवीं-सातवीं शताब्दी में हुआ था। उनकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी हिंदुस्तान पर करीबन ढ़ाई सौ वर्ष तक राज्य करती रही। औरंगजेब के साथ मुगल साम्राज्य का अंत और अंग्रेजों का हिंदुस्तान में आगमन एक महत्त्वपूर्ण घटना है ।
2. मुस्लिमों के पश्चात डेढ़ सौ वर्ष अंग्रेजों ने हिंदुस्तान पर शासन किया । उन्होंने कूटनीति को अपनाकर देश का दो हिस्सों, भारत-पाकिस्तान में विभाजन कर सांप्रदायिक संघर्ष को बढावा देने का प्रयास जारी रखा ।
3. देश-विभाजन के पश्चात ही मुस्लिमों के संघर्षशील जीवन का आरंभ होता है ।
4. विवेच्य उपन्यासों में मुस्लिम जीवन-संघर्ष का चित्रण प्रचुर मात्रा में मिलता है ।
5. प्रस्तुत उपन्यासों में भी धार्मिक एवं सांप्रदायिक संघर्ष का चित्रण अत्यधिक मात्रा में दृष्टिगोचर हुआ है ।

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 155
2. डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी - हिंदी उपन्यास - समकालीन विमर्श, पृष्ठ - 61

6. प्रस्तुत उपन्यासों के पात्र अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए (जैसे अधिकार, अस्तित्व, अन्याय, तलाक, अकाल आदि) विभिन्न रूपों से संघर्ष करते हैं ।

7. प्रादेशिक संघर्ष के कारण भी मुस्लिमों को मुश्किलों का सामना करना पड़ा है । कुछ उपन्यासों में नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में भी संघर्ष प्रस्फुटित हुआ है ।

8. विवेच्य उपन्यासों में आपसी संघर्ष का चित्रण भी प्राप्त हुआ है ।

9. अंतत: मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि देश-विभाजन के पश्चात ही वास्तविक रूप से मुस्लिम जीवन संघर्षमय रहा है । इसके मूल में आर्थिक कारण प्रधान है । इसके साथ ही सांप्रदायिकता का जहर भी संघर्ष का कारण बना है ।

❑❑❑❑